केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलम्

धर्ममंगल.

सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा विशेषांक

(आगम-अध्यात्म के आलोक में)

प्रस्तुति -ब्र. हेमचंद जैन 'हेम' (भोपाल)

द्वितीय आवृत्ति - ध्रुवधाम - बाँसवाडा के सौजन्य से

प. पू. श्री १०८ अध्यात्म योगी वीर सागरजी महाराज

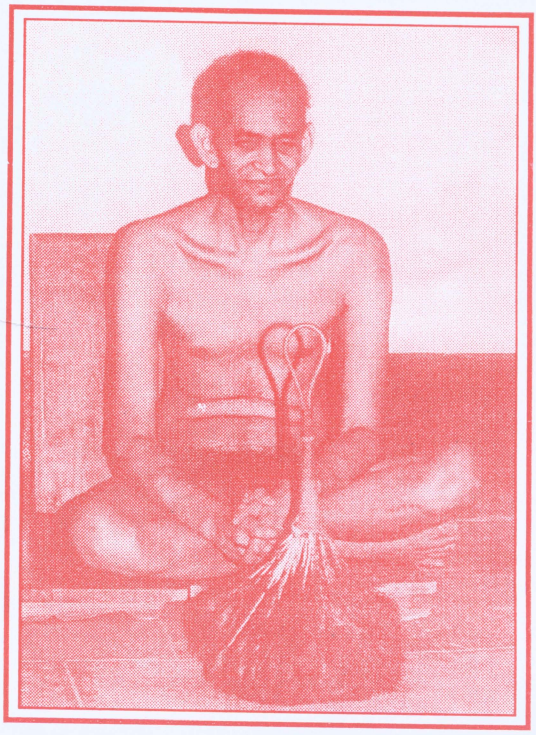

जन्म - ५ मई १९४०-अकलूज,
यम सल्लेखना - १० मार्च १९९३-कुंथलगिरि

२० वीं सदी के प्रथमाचार्य

प.पू.चारित्र चक्रवर्ती आचार्य
१०८श्री शांतिसागरजी महाराज

परम संरक्षक.

स्व. ब्र. हीरालाल खुशालचंद दोशी
मांडवे, सोलापुर.

केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलम्

धर्ममंगल.

सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा विशेषांक

(आगम-अध्यात्म के आलोक में)

प्रस्तोता ब्र. हेमचंद जैन 'हेम'
कहान नगर, लाम रोड
देवलाली (नासिक) महाराष्ट्र

द्वितीय आवृत्ति -
ध्रुवधाम - बाँसवाडा के
सहयोग से १००० प्रतियाँ

जैन धार्मिक व सामाजिक प्रबोधन का निर्भीक मराठी और हिंदी मासिक

दि. २ नवंबर २००९

संपादिका- प्रा. सौ. लीलावती जैन १, सलील अपार्ट., ५७ सानेवाडा,
औंध-पुणे (महाराष्ट्र) 411007 फोन- 020- 2588 7793

मानो या न मानो

प्रा. सौ.लीलावती जैन.

जैन धार्मिक समाज में जितनी उपजातियाँ,उससे अधिक पंथ भेदों की भरमार हो गयी है। इससे आगमप्रणीत वचनों में,अर्थों में भी हेरफेर होने लगे हैं। एक तरफ नारे लगाये जाते हैं, ' सिद्धांतों से कोई समझौता नहीं ! सर्वज्ञ प्रणीत वचनों के आगे कुछ नहीं। आगम ही सत्य है। आगम में भूल नहीं होनी चाहिए। ...' इ. इ. ....जी हाँ ! हमें भी यही सब कुछ मंजूर है। पता नहीं कौन सही है,कौन गलत?आगमप्रणीत वचनों का अर्थ लगाना एक कठिन काम है। मर्मज्ञ ही उसका मर्म जान सकता है। आखिर आगम को जानने का साधन ग्रंथ ही हैं । अब ग्रंथों के बारे में भी बड़े विवाद मचे हुए हैं। फलाँ ग्रंथ आगमप्रणीत है ही नहीं ! कहकर कुछ ग्रंथ बहिष्कृत भी हो जाते है।

अ कहता है ब आगमप्रणीत नहीं है, गलत है। ब कहता है- मैं ही सही हूँ अ गलत है। बेचारा आम आदमी उलझन में पड जाता है।आगम को समझना भी एक समस्या है। क्यों कि ग्रंथों-शब्दों का ही सहारा लेना पड़ता है और शब्द तो पुद्गल की पर्याय है। वक्ता/लेखक के,जीव के सारे भाव शब्दों में कहाँ व्यक्त हो पाते है? फिर हम संसारी जीवों के ज्ञान के उघाड़ की भी पामरता है। कुछ पुरुषार्थ की भी कमी है। जिसने जितना समझा, जिस दृष्टि से, जिस नय से समझा, उसकी नजर में वही सही होता है। कहीं हम सारे सात अंधे तो नहीं है?एक एक ही अवयव पकड़कर उसी को हाथी समझ रहे हैं? क्या अनेकांत से ऐसा माने लें कि यह भी सही हो सकता है और वह (सही)भी हो सकता है ?

समस्या यह है कि,अविरत सम्यग्दृष्टि को-चतुर्थ गुणस्थान में-शुद्धोपयोग/शुद्धात्मा - नुभूति होती है या नहीं?कोई कहता हैं, होता है, उन्होंने अनेकों प्रमाण आगम ग्रंथों से निकालकर दिखाये। वे भी तो पूर्वाचार्यों के ग्रंथों से ही उद्घृत हैं न ? कोई उसे नहीं मानता। वे भी अपने प्रमाण बताते हैं।.. अब समस्या यह है कि क्या आगम में दोनों बातें हैं? ऐसा कैसे हो सकता हैं? सत्य तो एकही है और वही आगम है। तो कौनसा सही माना जाये?

कोई कहता है कि'इनके पहले पूर्वाचार्यों ने ऐसा-ऐसा लिखा था। ये तो बादमें हुए हैं।'....तो क्या इतिहास के परवर्ती काल में लिखा ग्रंथ प्रामाणिक नहीं हो सकता? केवल इतिहास की प्राचीनता ही प्रामाणिक मान ली जाये? पूर्वकाल में और परवर्ती काल में जो ग्रंथ लिखे गये वे भी तो उन संसारी जीवों ने ही लिखे हैं, इनके या उनके ज्ञान के उघाड़ के पूर्णता की क्या कोई कसौटी है? वे भी तो भाषा के माध्यम से भावानुवादक मात्र थे । क्या सारे भाव उनकी पकड़ में आये होंगे?अगर उनसे मूल में कहीं भाव पकड़ने में भूल हो गयी हो तो वही भूल परंपरा के प्रवाह में चल पड़ी? कदाचित् बढ़ती गयी? तो फिर कसौटी भाव पकड़ने की होनी चाहिए या प्राचीनता की? क्या वस्तु सत्स्वरूप का, सत्यता का निर्णय केवल काल के आधार पर हो सकता है? तब यह सोचने पर मजबूर होना पड़ेगा कि किसी

भी काल में , किसी के ज्ञान का उघाड़ कितना है? हाँ ! काल की कसौटी वहाँ ली जा सकती है जहाँ मूल शुद्ध उगम-प्रवाह में मिलावट कहाँ से आयी? प्रथम किसने की? यह जब खोजना हो तब वहाँ इतिहास की,काल की कसौटी उपयुक्त सिद्ध हो सकती है।

भाषाएँ भी तो कई प्रकार से बदलती गयी, जो अनेकों संदर्भों में कभी इस पक्ष में तो कभी उस पक्ष में बुद्धि को लगाने में निमित्त बनती रहती है। संस्कृत, प्राकृत और आज की कई भाषाएँ ! उनके अर्थ लगाना भी कितना मुश्किल हो जाता है? प्राचीन भाषाओं के विद्वानों में भी अर्थ लगाने की समस्या पर एकमत नहीं होता । आज भी कुछ विद्वान अगर यह मानते हैं कि व्यवहार पहले होता है, निश्चय बाद में होता है। करें तो क्या करें? ऐसी समस्या जब निर्माण हो जाती है तब यह सोच लिया जाता है कि जो सर्वज्ञ प्रणीत/कथित है उसपर श्रद्धा/विश्वास कर लेना चाहिए। परंतु कुछ ग्रंथों में सर्वज्ञ कथन के नाम पर जो मत प्रकाशित किये गये हैं उनमें भी कही-कहीं अंतर दिखायी देता है । तब अप्रयोजनभूत तत्त्वों के बारे में भले ही सर्वज्ञ कथित वचन को प्रमाण मान लें, परंतु प्रयोजनभूत तत्त्वों के मत-मतांतरों पर तो सर्वज्ञ कथित के नाम-आधार पर आँखें मूँदकर श्रद्धा या विश्वास नहीं किया जा सकता। क्यों कि वे कुंदकुंद जैसे पूर्वाचार्य भी कहते हैं कि सर्वज्ञों ने जो कहा है वही मैं कहता हूँ परंतु उसका भी स्वीकार तुम परीक्षा करके, स्वयं अनुभूति करके ही करो।

जब ज्ञानी जनों को परीक्षाप्रधानी होकर प्रामाण्य या अनुमानों पर ही दृष्टि जमानी पड़ती है और जब ग्रंथ के प्रमाण या अर्थ के अनुमान भी काम नहीं आते और प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हो तो अनुभव को प्रमाण मानना ही एक मात्र साधन बच जाता है। अर्थात् यह अनुभव सर्वज्ञ प्रणीत वचनों के आधार पर परीक्षा प्रधानता से करने में ही वस्तुस्वरूप के सत्यता का निर्णय हो सकता है। तब जिनको अनुभव हुआ वे अपने अनुभवों का आधार लें, जिनके केवल सर्वज्ञ प्रणीत वचनों का या ग्रंथों का ही आश्रय हो, और अपनें अनुभवों में बात न उतरें, उनका समाधान अनुभव प्राप्तों के साथ क्या कभी हो सकता है? तब तो वे कहेंगे कि क्या प्रमाण है कि आपको अनुभव हो गया है? तो उसका जवाब यह है कि चतुर्थ गुणस्थान में अत्यल्प, अंशमात्र क्यों न हो, शुद्धोपयोग/शुद्धात्मानुभूति होती है जो जाति अपेक्षा से उसी पूर्ण अनुभूति के समान है। 'नहीं होती' कहने वाले भले ही कुछ कहे, पर 'होती है' कहने वालों के पास भी अनेकों प्रमाण है। मोक्षमार्ग प्रकाशक ७ वे अधिकार में कहा गया है कि-*जो आप्त भासित शास्त्र(प्रमाण) हैं उनमें कोई भी कथन प्रमाण विरूद्ध नहीं होता। क्यों कि या तो जानपना ही न हो या राग-द्वेष हो तब असत्य कहें । सो आप्त ऐसे होते नहीं है। तूने भली प्रकार परीक्षा नहीं की इसलिए भ्रम है।'*...

अब सवाल यह है कि भ्रम किस को है? हमारे अल्पमती के अनुसार इस विवाद में सब से महत्वपूर्ण निर्णायक साधन भाषा-शब्द न होकर भाव है। अनुभूति-भाव-का विषय है। शब्दों के-भाषा के संदर्भ पकड़कर अर्थ निकालने में उलझना होता है, शब्दों को

तोड़ामरोड़ा जाता है। मनचाहे अर्थ निकाले जाते हैं। दोनों मत अपनी हठधर्मिता को पकड़- कर बैठते हैं। इससे तो उचित यही है कि अनुभूति की, भाव की बात पकड़कर देख लीजिए। जिनको होती है, होती है बस, वे हाथपर रखे आँवले की भाँति निकालकर तो नहीं बता सकते, न ही उसका शब्दों में वर्णन कर सकते है। परिणामों से प्राप्त शांति चेहरे पर फैली दिखायी देती है। बोलचाल, खान पान में, व्यवहार में समता, शांति झलकती है। कषाय में मंदता बरतती है। इसपर से जानो, मानो तो मानो, न मानो तो आपकी मर्जी !अनुभूति का विषय तो ऐसा है जिसको अनुभूति होती है,वह उसके ही अनुभूति का विषय है। जिसके हृदय में जो भाव बसते हैं,वही उनको जान सकते हैं ,या सर्वज्ञ जान सकते है ! किसीके हाँ या ना कहने से वह सत्य या असत्य नहीं हो सकता। यह तो एक अननुभूत आनंद की उपलब्धि है। 'जिन ढूँढा तिन पाईया गहरे पानी पैठ ! और पैठ के लिए परिश्रम,साधना की जरूरत है।

एक मंदिरजी में एक महाराज आये । उन्होंने जो अर्थ बताये, दूसरे महाराज आये तो उन्होंने उन सभी संदर्भों को गलत करार दिया। कोई कहने लगा,शास्त्रसभा कराइए, तत्त्वचर्चा से अपने आप निर्णय हो जाता है। आजकल पहले जैसी धर्मसभाएँ भी तो नहीं होती, खंडन-मंडन नहीं होता। अगर होता भी है तो निर्णय लगना कठिन हो जाता है। निर्णय लग भी गया तो भी 'हम नहीं मानेंगे।'वाली हठधर्मिता का भी बोलबाला है ही!

कोई कहते हैं,'चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता' ऐसा मानने वालों का बहुमत है। पर क्या बहुमत किसी सिद्धांत के निर्णय की कसौटी हो सकता है?

कोई इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि 'जिसको जो ठीक लगे,करो, पर झगडे बढ़ाकर फूट तो मत पाडो । हाँ,उन्हें समझाया जा सकता है। अपने हक में मनवाया नहीं जा सकता।'

कोई कहता है, समाज में और भी कई समस्याएँ है। जिनके लिए हमे एक, संगठित होकर रहने की महति आवश्यकता है। काल बड़ा कठिन चल रहा है। ऐसे में मिथ्यात्व, मंत्र-तंत्र,अनाचार,शिथिलाचार,भ्रष्टाचार कई प्रकार के आँचार ! मंदिरों के झगड़े, लोभ, स्वार्थ के शिकारी ! मानव ने मानव को और मानव को प्रकृति ने भी खूब सताया है। क्या साधु क्या श्रावक, उँगली पर गिनने जितने चारित्र बचे हैं जिनके सामने नतमस्तक होने को मन करता है। अतः झगड़े मिटाओ !... यह बात तो समाज हित की अपेक्षा कहीं ठीक लगती भी है।

हम सोचते हैं, इन विषम स्थितियों में हमें भ्रष्टाचार मिटाने के लिए और सदाचार के उत्थान/सुधार के लिए एक शुद्धोपयोग ही आश्रय है। ताकि इन विषम परिस्थितियों में हम अपने आपको अपने धर्माधार से सम्भाल सकें। आत्मकल्याण का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। कम से कम कोई शुद्धोपयोग से अपने आप को दुरुस्त करता है तो अवश्य करने दीजिए न! आज चारों तरफ मिथ्यात्व का जो प्रदूषण फैला है उससे शुद्धोपयोग का भाव तो कहीं अधिक ऊँचाई पर ही ले जाने वाला है न? पहले मिथ्यात्व, भ्रष्टाचार, अनाचार, तेरा-मेरा पंथ के झगड़े, अर्थलिप्सा, स्वार्थ के षड़यंत्रों से तो निबटिए न ! शुद्धोपयोग होता है या नहीं इस विषय में उलझने से कहीं अधिक अपनी शक्तियाँ भ्रष्टाचार से निबटने में लगाना जरूरी

है। शुद्ध आत्मधर्म जानने-मानने वालों को अब आपसी मतभेद भुलाकर अब अशुद्ध का / मिथ्यात्व का डँटकर मुकाबला करना होगा। हमारा सिद्धांत भी अंत में आत्मा की अनुभूति पर जाकर पहुँचता है। अगर आप की नजर में अनुभूति होती ही नहीं तो केवल आत्मा की बात करना भी तो आगमप्रणीत है न? तो करने दीजिए न ! आत्मानुभूति का चित्र देखकर ही क्यों न हो, उस निमित्त से भाव तो आयेंगे ही न ! परिणाम तो बदलेंगे न ! अगर शुद्धात्मानुभूति होती है वैसा कहिए, या वैसा कहने दीजिए कि 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?' यों समझ लीजिए कि छह द्रव्य,सात तत्त्वों की समझपूर्वक मिथ्या परिणामों से वे बच ही रहे हैं न ! यह भी क्या कम है? वीतरागस्वरूप शुद्धोपयोगको प्राप्त करने के लिए यह संसारी जीव धर्म,मोक्ष का उद्यम करें तो कम से कम मिथ्या उद्यम तो छूटेगा न?कम से कम यह सोचकर देखें कि आपस में विवाद करने के स्थान पर आज कम से कम शुद्ध आत्मा की बात करने वालों को एक होकर मिथ्यात्व,अनाचार का डँटकर मुकाबला करना अत्यंत आवश्यक है। कम से कम तत्त्व मतभेदों के नाम पर हम एक दूसरे का विरोध तो न करें।उसके लिए पहले हमें आपसी इन मतभेदों को अलग रखना होगा। अतः पू. आ. विद्यानंदजी को नीति **'ठुकरावो मत गले लगाओ।'** के स्वीकार करने की आज अत्याधिक आवश्यकता है।

इसी आत्मानुभूति के संदर्भ में अनेकों प्रमाण पेश किये गये हैं। फिर भी इस विषय पर अनेकों शंकाएँ भी उपस्थित की गयी है। आगम कहता है कि अज्ञान भ्रम की जननी है। अतः हम जानते हैं कि अब इस विषयपर कुछ कहने का कोई उपयोग नहीं होगा फिर भी इतना सोचकर भी हम एक बार प्रयास और करना चाहेंगे अवश्य ! क्यों कि आगे जवाब और भी है। देखिए, इतना आपने भी सोचा है, और थोडा सोच लीजिए। अगर उचित लगे तो मानने से मत चूकिए। हमारी गलती है तो हम भी मानने से नहीं चूकेंगे।

मुनि विशुद्धसागरजी (शिष्य विरागसागरजी)सोलापुर में इस विषय पर अपने मत रख रहे हैं।एक बार भाई पं.ब्र.हेमचंदजी जैन(भोपाल)हमसे मिलने आये। उनसे इस विषय पर काफी चर्चा हुई। पं.श्री रतनलालजी बैनाड़ा से उनकी जो पत्रव्यवहारात्मक चर्चा हुई उन्होंने बतायी, हमने भी पढ़ी। उन्होंने जो भी कुछ संदर्भ दिये जो सबके पढ़ने योग्य लगे। अतः इस पुस्तिका के माध्यम से सबके सामने रखने का भाव हुआ। आशा है सभी अध्यात्म के मर्मज्ञ, रसिक इन विचारों का वीतराग भाव से स्वागत करेंगे।**आपके इस विषय पर अभिप्राय से अवश्य अवगत करायेंगे ताकि हम भी अपने भाव अधिक निर्मल बना सकें।** हम किसी भी आचार्य या मुनिराजों का, विद्वानों, पंडितों का अवमान नहीं करना चाहते। उनके प्रति पूर्ण आदर भाव है। न हि अपने मतों की स्थापना का आग्रह है, हमारे विचार में शुद्ध धर्म को माननेवाले सब एक हो, बस,इतना कहना चाहते हैं। प्रमाणऔर भी बहुत हैं। जरा इन्हें भी देख लेना चाहिए । हो सकता है कि आपके भाव बदल जायें या अगर हमारी दृष्टि में कहीं कमियाँ है तो हम सुधार लेंगे,आइए, आपका स्वागत है एक स्वस्थ/वीतराग चर्चा के लिए,आत्मधर्म के विषय पर एकमत होने के लिए ! फिर मानो या न मानो,मर्जी आपकी!

८

सत्यमेव जयते नानृतम्

ब्र. हेमचंद जैन, 'हेम',भोपाल

समय एवं सत्य दोनों महाकीमती है। आज आप समय को बर्बाद कर रहे हैं, कल समय आपको बर्बाद करे देगा। इसलिए हे बंधु ! आप अपने समय का सदुपयोग एवं प्रबंधन अपने धन की तरह करें। समय के सदुपयोग से समयसार की प्राप्ति होती है। तथा समय के दुरुपयोग से शुद्ध संसार की प्राप्ति होती है।

सत्य-असत्य कहाँ होता है? किसमें होता है? विचार कीजिए-धार्मिक दृष्टिकोण से या वस्तुस्वभाव से देखें तो कोई भी वस्तु सत् या असत् नहीं होती। इस उदा. से समझें कि-'यह घट है। इसमें तीन प्रकार की सत्ता है। 'घट'नामक पदार्थ की सत्ता है। घट को जानने वाले 'ज्ञान' की सत्ता है और घट 'शब्द' की भी सत्ता है। इसी प्रकार 'पट' नामक पदार्थ,उसको जानने वाले ज्ञान एवं पट शब्द की भी जगत में सत्ता है। जिनकी सत्ता है, वे सभी सत्य है, इन तीनों का सुमेल हो तो ज्ञान भी सत्य, वाणी भी सत्य, और वस्तु तो सत्य है ही ! किंतु जब वस्तु, ज्ञान और वाणी का सुमेल न हो-मुँह से बोले 'पट',और इशारा करें 'घट' की ओर, तो वाणी असत्य हो जायेगी। इसी प्रकार सामने तो हो 'घट'और हम उसे जाने पट,तो ज्ञान असत्य (मिथ्या) हो जायेगा। वस्तु तो असत्य होने से रही। वह तो कभी असत्य हो नहीं सकती। वह तो सदा ही स्व-स्वरूप से है ,पर-रूप से नहीं है ।

अतः सिद्ध हुआ कि असत्य वस्तु में नहीं होता। बल्कि उसे जानने वाले ज्ञान में,या कहने वाली वाणी में होता है। अतः मैं तो कहता हूँ कि अज्ञानियों के ज्ञान, श्रद्धान और वाणी के अतिरिक्त लोक में असत्य की सत्ता ही नहीं है। सर्वत्र सत्य का ही साम्राज्य है।

वस्तुतः जगत पीला नहीं है, किंतु हमें पीलिया हो गया है, अतः जगत पीला दिखायी देता है। इसीप्रकार जगत में तो असत्य की सत्ता ही नहीं है ,पर असत्य हमारी दृष्टि में ऐसा समा गया है कि वही जगत में दिखायी देता है।

सुधार भी जगत का नहीं, अपनी दृष्टि का, अपने ज्ञान का करना है। सत्य का उत्पादन नहीं करना है। सत्य तो है ही। जो जैसा है वही सत्य है। उसे सही जानना है, मानना है। सही जानना-मानना ही सत्य प्राप्त करना है और आत्म सत्य को प्राप्त कर मोह-राग-द्वेष का अभाव कर वीतरागता रूप परिणति होना ही +सत्य धर्म है।

यदि मैं पट को पट कहूँ तो सत्य, किंतु पट को घट कहूँ तो असत्य है, झूठ है। मेरे कहने से पट-घट तो नहीं हो जायेगा। वह तो पट ही रहेगा। वस्तु में झूठ ने कहाँ प्रवेश किया? झूठ का प्रवेश तो वाणी में हुआ। इसीप्रकार यदि पट को घट जाने तो ज्ञान झूठा हुआ,वस्तु तो नहीं। मैंने पट को घट जाना-माना या कहा, इसमें पट का क्या अपराध है? गलती तो मेरे ज्ञान या वाणी में हुई है। गलती तो सदा ज्ञान या वाणी में होती है। वस्तु में नहीं। इसप्रकार यथार्थ को समझते हुए इस उदा. से अपने सत्य रूप का दर्शन करें।

अब आत्मा एवं शरीर पर घटाकर देखिए। अरूपी आत्मा एक पदार्थ है, वस्तु ह,वास्तविक सत्तात्मक द्रव्य है। रूपी शरीर भी एक पदार्थ है,वस्तु है,वास्तविक सत्तात्मक द्रव्य है। इनको जानने वाले ज्ञान की भी सत्ता है और उनको कहने वाले शब्दों की भी सत्ता है। इनकी सत्ता है अत: ये सत्तात्मक पदार्थ सत्य हैं। अब जो यदि पदार्थ का, पदार्थ के ज्ञान का एवं पदार्थ को कहने वाले शब्द का सुमेल हो जाये तो ज्ञान भी सत्य,वाणी भी सत्य और वस्तु/पदार्थ तो सत्य है ही ! यही स्व-पर का विभेदक ज्ञान ही भेदज्ञान कहलाता है और इस भेदज्ञान पूर्वक ही निज शुद्धात्मा का अनुभव प्रगट हो जाता है। मुक्ति का मार्ग मिल जाता है, अतीन्द्रिय आनंद की कणिका प्रगट हो जाती है। इसी में लीन रहते-रहते कैवल्य सूर्य प्रगट हो जाता है। ॐ

सहज चिदानंद ।

धर्म्यध्यान- आगम के आलोक में

(१)श्लोकवार्तिक- जो जो ज्ञान वह ध्यान है।-

(२) बारसणुपेक्खा-(आ. कुंदकुंद देव) -

सुद्धुव जोगेण पुणो धम्मं सुक्खं च होदि जीवस्स।
तह्या संवरहेदू झाणो त्ति विंचतिए णिच्चं ॥६४॥

(३)बृहदद्रव्यसंग्रह- गाथा ५७- *अत्राह शिष्यः । अद्य काले ध्यानं नास्ति। कस्मादिति चेत् उत्तम सहननाभावाद्दशचतुर्दश-पूर्वगत श्रुतज्ञानाभावाच्च। अत्र परिहारः - शुक्लध्यानं नास्ति धर्म्यध्यानमस्तीति। तथाचोक्तं मोक्षप्राभृते श्री कुंदकुंदचार्य दैवैः- 'भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स । तं अप्पसहावठिए ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणि॥१॥ अज्जावि तिरयणसुद्धा अप्पा झाऊण लहइ इंदत्तं। लोयतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥२॥*

अर्थ- यहाँ शिष्य कहता है, -इस पंचम काल में ध्यान नहीं है, क्यों कि इस काल में उत्तम संहनन का अभाव है और दश तथा चौदह पूर्व का श्रुतज्ञान भी नहीं है।

समाधान- इस काल में शुक्लध्यान नहीं है, परंतु धर्म्यध्यान है। श्री कुंदकुंदाचार्य देव ने मोक्षप्राभृत में (गाथा ७६-७७)में कहा है कि भरतक्षेत्र में दु:षम नामक पंचम काल में ज्ञानी जीव को धर्म्यध्यान होता है। वह धर्म्यध्यान आत्मस्वभाव में स्थित होने वाले को होता है। जो ऐसा नहीं मानता वह अज्ञानी है। अब भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन रत्नों से शुद्ध जीव आत्मा का ध्यानकरके इंद्रपद अथवा लोकांतिक देवपद प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर (मनुष्य होकर) मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

(४)कार्तिकेयानुप्रेक्षा-गाथा ४७१-४७२ की टीका- *धर्मो वस्तुस्वरूपं धर्मादनपेतं धर्म्यध्यानं तृतीयम्॥४७१॥ .....धर्म्य धर्मे स्वस्वरूपे भवं धर्म्यं ध्यानम्।।४७२॥*

अर्थ- धर्म याने वस्तुस्वरूप(वस्तु का स्वभाव), वस्तु स्वरूप से रहित न हो ऐसा जो ध्यान उसको धर्म्यध्यान कहते हैं। धर्म के बिना इस ध्यान का अस्तित्व नहीं पाया जाता। धर्म्य याने निजात्मा के स्व-स्वभावमय धर्म में होने वाला वह धर्म्यध्यान है।

जिज्ञासा -समाधान -जिनभाषित मई २००५

समाधान कर्त्ता- पं. रतनलाल जी बैनाड़ा

प्रश्नकर्त्ता- श्रीमती ज्योति लुहाड़े, कोपरगाँव

जिज्ञासा-क्या चतुर्थ गुणस्थान में आत्मानुभूति होती है?

समाधान - इस प्रश्न का उत्तर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज ने 'सम्यक्त्वसारशतकम्' नामक ग्रंथ में बहुत सुंदर दिया है। उसी के अनुसार यहाँ लिखा जाता है। 'जब संज्वलन कषाय का तीव्र उदय न होकर मंद उदय होता है,तब यह जीव अपने पुरुषार्थ से उस मंद उदय को दबाकर या नष्ट करके अपने आप में लीन हो जाता है, उस लीन होने को आत्मानुभव या आत्मानुभूति कहते हैं। यही स्वरूपाचरण चारित्र है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को आत्मानुभूति तो नहीं होती मगर आत्मतत्त्व का विश्वास जरूर होता है। जैसे-किसी व्यक्ति के तीन पुत्र हैं। जिन्होंने नमक की डेली को उठाकर खाया वह नमकीन लगी। फिर जब उनको मिश्री की डेले दिये तो उन्होंने उनको भी नमक मानकर दूर फेंक दिया। तब पिता ने कहा, यह नमक नहीं मिश्री है ,एवं नमकीन नहीं, मीठी है। परंतु पुत्रों ने नहीं माना। बाद में जब मिश्री के डेले पर मक्खियाँ भिनभिनाने लगी नमक के डेले पर मक्खियाँ नहीं गयीं तब पिता ने फिर समझाया। तीन पुत्रों में से एक पुत्र को फिर भी विश्वास नहीं हुआ। अन्य दो पुत्रों में से एक पुत्र ने कहा कि पिताजी कह रहे हैं अतः यह मिश्री ही होगी,मीठी ही होगी। परंतु तीसरे पुत्र ने तुरंत मिश्री की डेली को उठाकर चखा, और कहा, अहा, सचमुच मिश्री है, मीठी है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि को तो आत्मतत्त्व पर विश्वास ही नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को आत्मविश्वास मात्र ही होता है। परंतु शुक्लध्यानी जीव को आत्मानुभूति अथवा आत्मानुभव रूप आनंद की प्राप्ति होती है। यदि कोई गृहस्थ होते हुए भी अपने अन्तस्वरूप का चिंतवन कर रहा हो, जैसे मैं शुद्ध-बुद्ध सच्चिदानंद हूँ, मेरे अंदर राग द्वेष वगैरेह कुछ भी नहीं है, तो उस समय भी उस जीव के आत्मानुभव नहीं कहा जा सकता। यह आदमी तो उस भिखारी की तरह पागल है जो जन्म से दरिद्र होते हुए भी अपने आप को चक्रवर्ती मानता हो। इससे तो वह मिथ्यादृष्टि अच्छा है जो अपने आपको दुखी अनुभव करता हुआ यह सोचता है कि यह दुख मुझे क्यों हो रहा है? और यह कैसे नष्ट हो सकता है? इतना अवश्य है कि जो तत्त्व-श्रद्धानी कभी गृहस्थोचित बातों की तरफ से मन को मोड़कर एकसा विचार कर रहा हो कि मैं स्वभाव की अपेक्षा तो सिद्धों के समान निर्विकार हूँ।वर्तमान में कर्म संयोग के कारण बाह्य पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट कल्पना रूप विकार मुझ में हो रहा है, जिसे मुझे छोड़ना चाहिए, इत्यादि। तो उसका यह विचार सद्विचार है, धर्मभावनारूप है और मंद लेश्या के होने से होने वाला यह परिणाम स्वरूपाचरण या आत्मानुभूति या आत्मानुभव में कारण माना गया है। आ. ज्ञानसागरजी महाराज के उपरोक्त प्रकरण के अनुसार चतुर्थ गुणस्थान में आत्मविश्वास तो होता है, परंतु आत्मानुभूति अथवा स्वरूपाचरण रूप चारित्र कदापि नहीं होता।

ॐ

भोपाल दि. २४.०५.२००५

मंगलमय मंगल करण वीतराग विज्ञान।
नमों ताहि जातें भये, अरहंतादि महान।।

आगमनिष्ठ, आगमवेत्ता, श्रीयुत् पं. रतनलालजी बैनाड़ा को जिज्ञासु ब्र. हेमचंद्र जैन का सादर यथायोग्य अभिवादन सह जयजिनेंद्र, दर्शन विशुद्धि।

अत्र स्वाध्यायामृतपानबलेन कुशलं तत्राप्यस्तु। मैं जिनभाषित का नियमित पाठक हूँ। इस मई २००५ माह के जिज्ञासा-समाधान में आप ने अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को आत्मानुभूति से रहित आत्मविश्वासी मात्र मान्य किया है। वह भी प.पू. ज्ञान सागरजी आचार्य के शब्दों में, न कि पूर्ववर्ती आचार्यों के शब्दों में। कारण क्या है? मुनिवर प.पू.वीरसागरजी महाराज (अकलूज-सोलापुर) द्वारा लिखित चारों अनुयोगों के आधार पर संकलित 'अविरत सम्यक्त्वी के शुद्धात्मानुभूति की सप्रमाण सिद्धि' पुस्तिका आपने पढ़ी ही होगी। तथा उनके द्वारा लिखित 'अध्यात्म न्याय दीपिका' भी पढ़ी होगी। तथा 'समयसार तात्पर्यवृत्ति टीका' का उन्हीं के द्वारा कृत हिंदी अनुवाद भी पढ़ा ही होगा। तत्संबंध में आपका क्या कहना है? अब मुझ जिज्ञासु की निम्नलिखित जिज्ञासाओं का आगम प्रमाण पूर्वक जो आपकी शैली है, समाधान करने की कृपा करें।

भवदीय- ब्र. हेमचंद्र जैन 'हेम', भोपाल

धर्म्यध्यान-आगम के आलोक में

(१)महापुराणं- पर्व २१, श्लोक ७५ -

देहावस्था पुनर्यव न स्याद्ध्यानोपरोधिनी।
तदवस्था मुनिर्ध्यायेत् स्थित्वासित्वाधिशय्य वा ॥ ७५॥

- किसी भी अवस्था में (बैठे हुए, लेटे हुए, अथवा अर्धपद्मासन, पद्मासन, खड्गासन) आदि में ध्यान हो सकता है। जब कभी उपयोग को अंतरंग स्वभाव को जानने में लगायेंगे तब आत्मानुभव हो सकता है।

(२)प्रवचनसार गाथा १८१-

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति भणिदमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये॥१८१॥

अर्थ-पर के प्रति शुभपरिणाम पुण्य है और पर के प्रति अशुभ परिणाम पाप है। पर जो परिणाम दूसरों के प्रति जाता नहीं ऐसा (अनन्य) परिणाम उसी समय दुःखक्षय का (संवरपूर्वक निर्जरा का शुद्धात्मानुभूति का -परमानंद का- निराकुलता का) कारण है ऐसा कहते हैं।

पं. ब्र.हेमचंदजी जैन द्वारा उपस्थित १९ जिज्ञासाएँ -

जिज्ञासा १ - निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन का क्या लक्षण है? परिभाषा बताइए ।

जिज्ञासा २ - निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन एक साथ होते हैं या आगे पीछे?

जिज्ञासा ३ - क्या सम्यग्दर्शन की पर्याय निश्चय-व्यवहार दो रूप होती है ?

जिज्ञासा ४ - क्षायिक सम्यग्दृष्टि (श्रेणिक राजा का जीव जो वर्तमान में प्रथम नरक में हैं।) को निश्चय सम्यग्दर्शन है या व्यवहार या दोनों?

जिज्ञासा ५ - औपशमिक क्षायोपशमिक, क्षायिक-इन तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों को क्या (आत्मानुभूति रहित?) आत्मविश्वास एक सदृश होता है? या तीनों के आत्मविश्वास में कुछ अंतर रहता है?

जिज्ञासा ६ - प्रवचनसार गाथा ८० (जो जाणदि अरहंतं....)एवं समयसार गाथा ३२० (दिट्ठि जहेव णाणं....) की श्रीमद् प.पू.जयसेनाचार्य विरचित तात्पर्यवृत्ति टीकाओं में क्रमशः करणलब्धिपूर्वक 'अविकल्पस्वरूप की प्राप्ति' तथा 'भव्यत्व शक्ति की व्यक्तता' का स्वरूप बतलाया है। क्या इसका अर्थ मात्र आत्मविश्वास होना ही सम्यग्दर्शन माना गया है?

जिज्ञासा ७ -(अ) प्रवचनसार गाथा ८० ता.वृ. टीका के प्रारंभ में लिखित 'अथ चत्ता पावारंभ (गाथा ७९) इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादि विनाशाभावे शुद्धात्म लाभो न भवति।'...का क्या अर्थ है?

जिज्ञासा ७ - (ब)प्रवचनसार गाथा २४८ (दंसणणाणुवदेसो ...) कर ता.वृ. टीका में कथित 'ननु शुभोपयोगिनामपि क्वापिकाले...श्रावकाणामपि सामायिकादि काले शुद्ध भावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति ।....बहुपदस्यप्रधानत्वा-दाम्रवन निम्बवनवदिति।' का अर्थ खुलासा करें।

जिज्ञासा ८ - प्रायोग्य लब्धि में, करणलब्धि में, तथा अनिवृत्तिकरणोपरांत होने वाले आत्मा के विश्वास में क्या अंतर है?

जिज्ञासा ९ - देशव्रती श्रावक एवं अविरत सम्यग्दृष्टि के आत्मविश्वास में क्या कुछ फर्क होता है? क्यों कि आपके अनुसार आत्मानुभूति मुनि/ संयमी को ही होती है?

जिज्ञासा १० - आपके हिसाब से मुनिराजों को ही आत्मानुभूति होती है तो गृहविरत श्रावकों (क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिका)को भी स्वात्मानुभूति नहीं होती होगी?

जिज्ञासा ११ - जैनों एवं जैनेतर मतावलम्बियों के आत्मा के विश्वास में क्या कुछ अंतर होता है? क्यों कि अन्य मतावलंबी भी आत्मा के होने में विश्वास रखते हैं।

जिज्ञासा १२ - वह आत्मा जिसका कि जैनों(सम्यग्दृष्टियों) को विश्वास होता है क्या वह द्रव्यकर्म, नोकर्म (शरीर), भावकर्म, (मोह-राग-द्वेष) से रहित आत्मा होता है या इनके सहित होता है?

जिज्ञासा १३ - अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है या नहीं? यदि है तो उसके चारित्र कौनसा प्रगट हुआ कहलायेगा? मिथ्या चारित्र भी उसके नहीं है।

जिज्ञासा १४ - सम्यक्त्वाचरण (मोक्षपाहुड गाथा ५ से १०) एवं स्वरूपाचरण चारित्र में क्या अंतर है?

जिज्ञासा १५ - मोक्षमार्ग में प्रगट होने वाला संवर-निर्जरा तत्त्व क्या शुभ भाव रूप है या वीतरागभाव/शुद्ध भाव रूप ही है?

जिज्ञासा १६- मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि जो नववें ग्रैवेयक तक जाते हैं तथा जिन्हें ११ अंगों तक का ज्ञान प्रगट हो जाता है, क्या उनको आत्मा का विश्वास नहीं होता? क्या उनके संवर-निर्जरा तत्त्व प्रगट होते हैं या नहीं?

जिज्ञासा १७ - धर्म्यध्यान के स्वामी चौथे से सातवें गुणस्थानवर्ती जीव कहे हैं। तब असंयमी सम्यग्दृष्टि के भी चारित्र का अंश प्रगट हुआ होना चाहिए,अन्यथा (१६+२५=४१) प्रकृतियों का बंध नहीं रूकता?अनंतानुबंधी चारित्रमोह की प्रकृति का अनुदय /अप्रशस्त उपशम/ क्षय ही कारण है। इस चारित्र के अंश का नाम आगम में कहीं कुछ आया हो तो स्पष्ट करें।

जिज्ञासा १८ - समयसार गाथा -१३ (भूदत्थेणाभिगदा...)की आत्मख्याति टीका में अंत में 'एवमसावेकत्वेन द्योतमान शुद्धनयत्वेनानुभूयतएव। या त्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेव। इति समस्तमेव निरवद्यम्।' इसका अर्थ स्पष्ट करें।

जिज्ञासा १९ - तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार प्रथम खंड पृष्ठ ५५५ पर 'नहि चारित्र - मोहोदयमात्रादभवच्चारित्रं दर्शनचारित्रमोहोदय जनितादचारित्रादभिन्नमेवेति-साधयितुं शक्यं सर्वत्र कारण भेदस्य फलाभेदकत्वप्रसक्तेः। .....सिद्धांत विरोधात्। ....इसके हिंदी अर्थ में पं. श्री माणकचंदजी कौंदेय न्यायाचार्यजी ने चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को स्वरूपाचरण चारित्र (अचारित्र में)कहा है तथा जैन सिद्धांत प्रवेशिका में पं. गोपालदासजी बरैया ने प्रश्न १११/११२ में स्वरूपाचरण चारित्र कहा है। क्या आपको यह मान्य है?

धर्म्यध्यान- आगम के आलोक में

(१)समाधि शतक-श्लोक ७३-आचार्य पूज्यपाद -

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा, निवासोऽनात्मदर्शिनाम् ।
दृष्टात्मनां निवासस्तु, विविक्तात्मैव निश्चलः ॥

अर्थ-मिथ्यादृष्टि का निवास यह नगर है और यह अरण्य है, ऐसा दो प्रकार का है। सम्यग्दृष्टि का निवास एक निश्चल सबसे भिन्न आत्मा है। इस पर से सिद्ध है कि ध्यान वन में होता है, नगर में या समुदाय में नहीं होता ऐसा दुराग्रह मिथ्या है। अंतर्दृष्टि वाले को तो सिर्फ निजस्वभाव ही प्रतीति में आता है, चाहे वह कहीं भी हो।

१४

पं.रतनलालजी बैनाड़ा का पत्र- पं.हेमचंदजी के नाम

ब्र. हेमचंद्र जी सस्नेह जयजिनेंद्र,

आपका पत्र दि.२४ मई २००५ प्राप्त हुआ। व्यस्तता के कारण जवाब कुछ देरी से दे रहा हूँ। वास्तविकता तो यह है कि आगम को ठीक ढंग से न समझ पाने के कारण ऐसी भ्रांतियाँ स्वाभाविक हैं। दो वर्ष पूर्व भी पं. बाबुलालजी इंजिनियर कोटा वाले, पू. मुनिश्री सुधासागरजी महाराज के कोटा चातुर्मास में उनके निकट आये थे। पू. मुनिश्री ने लगातार कई सप्ताह तक उनकी गलत मान्यताओं का निराकरण कर उनकी भ्रांतियों को, आगमविरूद्ध मान्यताओं को ठीक किया था। टोडरमल स्मारक के संबंधित विद्वानों की सब की, लगभग वे ही एक सी गलत धारणाएँ हैं। आपने भी अपने पत्र में भी उन्हीं मान्यताओं को जिज्ञासा के रूप में लिखा है। मैंने यद्यपि समस्त जिज्ञासाओं का संक्षिप्त समाधान संलग्न पत्र में दिया है,परंतु इन सभी जिज्ञासाओं पर तो खुलकर स्पष्ट विवेचना होनी चाहिए।

मुझे अत्यंत आश्चर्य है कि जिनवाणी के संबंध में अपनी मान्यताओं के समक्ष, पू. आचार्यों के शास्त्रीय प्रमाणों का अपलाप क्यों किया जा रहा है? जिनवाणी भक्त एवं धर्मपिपासु मुमुक्षु का तो कर्तव्य यह होना चाहिए कि आगम में अपनी गलत मान्यता साबित होने पर तुरंत ही उस मान्यता को जिनवाणी के अनुरूप बना लें।

मेरी भावना तो यह है कि हम सब एवं आप सब विद्वात् गण, चातुर्मास के इन दिनों में पू.आ.विद्यासागरजी महाराज के समक्ष या पू. मुनिश्री सुधासागरजी के या पू. मुनिश्री प्रमाण सागरजी के समक्ष उपरोक्त सभी जिज्ञासाओं के विस्तृत समाधान हेतु सप्रमाण उपस्थित हो। और अपनी मान्यताओं को आगमानुसार परिवर्तन करने का अभिनव प्रयास करें। यदि पक्ष छोड़कर ऐसा किया गया तो सभी सैद्धांतिक भूलों का निराकरण हो जायेगा तथा सामाजिक एकता को भी ऐतिहासिक संबल प्राप्त होगा।

मैं आपसे कभी मिला तो नहीं हूँ, परंतु आपके ज्ञान की चर्चाएँ अक्सर सुनता रहता हूँ। आप जिज्ञासु हैं, ऐसा कहा जाता है। मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरे उपरोक्त सुझाव को उचित मानते हुए इसी चातुर्मास में पू. आचार्यश्री आदि के निकट बैठने को तिथियाँ निश्चित कर मुझे सूचित करेंगे।

यह भी निवेदन है कि पत्र का उत्तर बिंदुवार तथा आर्ष आगम प्रमाण सहित देने का कष्ट करें।

मंगल भावनाओं सहित-

रतनलाल बैनाड़ा,
१/२०५, प्रोफेसर कालोनी, आगरा - २८२ ००२

१५

पं. श्री रतनलालजी बैनाड़ा (आगरा) द्वारा उक्त १९ जिज्ञासाओं का समाधान-

जिज्ञासा १- निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन का क्या लक्षण है? परिभाषा बताइए ।

समाधान- १. श्री बृहद्द्रव्यसंग्रह-गाथा ४१ की टीका में कहा है-

'एवमुक्तप्रकारेण मूढत्रयमदाष्टक षडयातन शङ्काद्यष्टमलरहितं शुद्धजीवादितत्त्वश्रद्धान-लक्षणं सराग सम्यक्त्वाभिधानं व्यवहार सम्यक्त्वं विज्ञेयम्। तथैव तेनैव व्यवहारसम्यक्त्वेन पारम्पर्येण साध्यं शुद्धोपयोगलक्षण निश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्न परमाह्लादेकरूप-सुखामृतरसास्वादनमेवोपादेयमिन्द्रियसुखादिकं च हेयमिति रुचिरूपं वीतराग चारित्रा-विनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति।'

ऐसे इस पूर्वोक्त प्रकार से तीन मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन और शंका आदि आठ दोषरूप से पच्चीस मल हैं उनसे रहित तथा शुद्ध जीव आदि तत्त्वार्थों के श्रद्धानरूप लक्षण का धारक, सराग सम्यक्त्व है दूसरा नाम जिसका ऐसा व्यवहार सम्यक्त्व जानना चाहिए और इसीप्रकार उसी व्यवहार सम्यक्त्व द्वारा परंपरा से साधने योग्य, शुद्ध उपयोगरूप निश्चय रत्नत्रय की भावना से उत्पन्न जो परम आह्लादरूप सुखामृत रस का आस्वादन है वही उपादेय हैं और इंद्रियजन्य सुख आदिक हेय है ऐसी रुचिरूप तथा वीतराग चारित्र के बिना नहीं उत्पन्न होने वाला ऐसा वीतराग सम्यक्त्व नाम का धारक निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिए।

२. परमात्म प्रकाश २/१८ की टीका में पृ. १३२ पर इस प्रकार कहा है-

द्विधा सम्यक्तं भण्यते, सराग-वीतराग भेदेन। सरागसम्यक्त्वलक्षणं कथ्यते। प्रशम - संवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्ति-लक्षणं सरागसम्यक्त्वंलक्षणं भण्यते, तदेव व्यवहार सम्यक्त्वमिति। तस्य विषयभूतानि षड्द्रव्याणीति। वीतराग सम्यक्त्वं निजशुद्धात्मानुभूति लक्षणं वीतराग चारित्राविनाभूतं तदेव निश्चयसम्यक्त्वमिति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं भवतीतिबहुधा व्याख्यातं पूर्व भवद्भिः, इदानीं पुनः वीतराग चारित्राविनाभूतं निश्चयसम्यक्त्वं व्याख्यातमिति पूर्वापारविरोधः कस्मादिति चेत्। निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थंकरपरमदेव भरतसगररामपाण्डवादीनां विद्यते, नच तेषां वीतराग चारित्रमस्तीति परस्परविरोधः,अस्ति चेत्तर्हितेषासंयतत्त्वं कथमिति पूर्वपक्षः। तत्र परिहारमाह। तेषां शुद्धात्मोपादेयभावनारूपं निश्चयसम्यक्त्वं विद्यते। परं किन्तु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रतप्रतिज्ञाभङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यते। शुद्धात्म भावनाच्युतः सन्तः भरतादयोनिर्दोषिपरमात्मनामर्हत्सिद्धानां गुणस्तववस्तुस्तवरूप स्तवनादिकं कुर्वन्ति तच्चरितपुराणादिकं च समाकर्णयन्ति तदाराधकपुरुषाणामाचार्योपाध्यायसाधुनां विषय

कषायदुर्ध्यानवञ्चनार्थसंसारस्थितिच्छेदनार्थं च दानपूजादिकं कुर्वन्ति तेन कारणेन शुभरागयोगात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा वीतरागचारित्राविनाभूतस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य परंपरया साधकात्वादिति। वस्तुवृत्त्या तु तत्सम्यक्त्वं सरागसम्यक्त्वाख्यं व्यवहारसम्यक्त्वमेवेति भावार्थः।

सम्यक्त्व दो प्रकार का है, एक सराग सम्यक्त्व और दूसरा वीतराग सम्यक्त्व। सराग सम्यक्त्व का लक्षण कहते हैं। प्रशम अर्थात् शांतिपना, संवेग अर्थात् जिनधर्म की रुचि तथा जगत से अरुचि, अनुकंपा अर्थात् परजीवों को दुःखी देखकर दयाभाव और आस्तिक्य अर्थात् देव गुरु धर्म की तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा इन चारों का होना वह व्यवहारसम्यक्त्वरूप सराग सम्यक्त्व है। उसके विषयभूत छह द्रव्य हैं। जो वीतराग सम्यक्त्व निजशुद्धात्मानुभूति लक्षण वाला और निश्चय चारित्र के साथ होता है, वही निश्चय सम्यक्त्व है। यहाँ प्रभाकर भट्ट कहते हैं-निजशुद्धात्मा ही उपादेय है। ऐसी रूचिरूप निश्चय सम्यक्त्व का कथन पहले तुमने अनेक बार किया, फिर अब वीतराग चारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व है, यह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापार विरोध है। क्यों कि जो निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व तो गृहस्थ में तीर्थंकर परमदेव भरत चक्रवर्ती और राम पाण्डवादि बड़े-बड़े पुरुषों के रहता है। लेकिन उनके वीतराग चारित्र नहीं है। यही परस्पर विरोध है। यदि उनके वीतराग चारित्र माना जावे तो असंयतपना क्यों कहा? यह प्रश्न किया। उसका उत्तर श्री गुरु देते हैं। उन महान बड़े पुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसी भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व तो है परन्तु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है। व्रत प्रतिज्ञा भंग होती है इस कारण से वे तब तक असंयमी कहलाते हैं। शुद्धात्मा की अखंड भावना से रहित हुए भरत, सगर, राघव, पाण्डवादिक निर्दोष परमात्मा अरहंत सिद्धों के गुणस्तवन वस्तुस्तवनरूप स्तोत्रादि करते हैं और उनके चारित्र पुराणादिक सुनते हैं तथा उनकी आज्ञा के आराधक जो महान पुरुष आचार्य,उपाध्याय,साधु उनको भक्ति से आहार दानादि करते हैं ,पूजा करते हैं। विषयकषाय रूप खोटे ध्यान के रोकने के लिए तथा संसार की स्थिति के नाश करने के लिए ऐसी शुभ क्रिया करते हैं। इसलिए शुभराग के संबंध से सराग सम्यग्दृष्टि है और इनके सम्यक्त्व को निश्चयसम्यक्त्व भी कहा जा सकता है , क्यों कि वीतराग चारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व के परंपरया साधकपना है। वास्तव में विचारा जावें तो गृहस्थ अवस्था में इनके वह सरागसम्यक्त्व कहा जाने वाला व्यवहारसम्यक्त्व व्यवहार व्यवहार ही है ऐसा जानो।

३. समयसार गाथा की टीका पृ. १५८ में इसप्रकार कहा है-

जीवादिनवपदार्थानां विपरितानिभिवेशरहिततत्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।(तेसिमधिगमो णाणं)तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहिततत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानं। रागादीपरिहरणं चरणं)तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादि परिहारश्चरित्रं। (एसो दु मोक्खपहो।) इत्येष व्यवहारमोक्षमार्गः। अथवा तेषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थानां शुद्धात्मनः

सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यगवलोकनं निश्चयसम्यक्त्वम्। तेषामेव सम्यक्परिच्छित्तिरूपेण शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयः सम्यग्ज्ञानम्। तेषामेव शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयं कृत्वा रागादिविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्मन्यवस्थानं निश्चयचारित्रमिति निश्चयमोक्षमार्गः।

जीवादि नवपदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित जो सही श्रद्धान है वही सम्यग्दर्शन है। उन्हीं जीवादि पदार्थों का संशय, विमोह, विभ्रम इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है निर्णय कर लिया जाता है, जान लिया जाता है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है और उन्हीं के संबंध से होने वाले जो रागादिक-विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक्-चारित्र कहलाता है। यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। हाँ, भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में ठीक-ठीक अवलोकन करना, निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय-सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिरूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना निश्चयसम्यक्चारित्र है। इसप्रकार यह निश्चय मोक्षमार्ग हुआ।

जिज्ञासा २ - निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन एक साथ होते हैं या आगे-पीछे?

समाधान - प्रश्न क्र. १ के समाधान में यह स्पष्ट है कि व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन है और निश्चयसम्यग्दर्शन साध्य है। इससे यह सिद्ध है कि व्यवहार सम्यग्दर्शन पहले होता है और निश्चय सम्यग्दर्शन बाद में।

१.बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ४१ की टीका में पृ.१४० में इसप्रकार कहा है-

'अत्र व्यवहारसम्यक्त्वमध्ये निश्चयसम्यक्त्वं किमर्थं व्याख्यातमिति चेद्-व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चय सम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभावज्ञापनार्थमिति।'

अर्थ-यहाँ इस व्यवहार सम्यक्त्व के व्याख्यान में निश्चयसम्यक्त्व का वर्णन क्यों किया जाता है? व्यवहार सम्यक्त्व से निश्चय सम्यक्त्व सिद्ध किया जाता है। इस साध्य-साधक भाव को बतलाने के लिए किया गया है।

२.-पंचास्तिकाय गाथा १०७ की टीका में आ. जयसेन ने कहा है-

'इदं तु नवपदार्थ विषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं। किं विशिष्टम्। शुद्धजीवास्ति-कायरुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थायामात्माविषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परम्परया बीजम्।'

अर्थ-यह जो नवपदार्थ का विषयभूत व्यवहारसम्यक्त्व है वह शुद्धजीवास्तिकाय की रुचिरूप जो निश्चयसम्यक्त्व है उसका तथा छद्मस्थ अवस्था में आत्मविषयक स्वसंवेदन ज्ञान का परंपरा से बीज है।

३.-श्री प्रवचनसार चारित्राधिकार गाथा-२ की टीका में आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी न इसप्रकार कहा है-

'अहो निःशङ्कितत्वनिःकांक्षितत्वनिर्विचिकित्सत्वनिर्मूढदृष्टित्वोपबृंहण स्थितिकरण वात्सल्यप्रभावनालक्षणदर्शनाचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीमिदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे।

अर्थ-अहो निःशङ्कितत्व,निःकांक्षितत्व,निर्विचिकित्सत्व,निर्मूढदृष्टित्व,उपबृंहण,स्थिति-करण, वात्सल्य, प्रभावना स्वरूप दर्शनाचार, तू शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं है। ऐसा मैं निश्चय से जानता हूँ तो भी तुझको तब तक स्वीकार करता हूँ, जब तक तेरे प्रसाद से शुद्ध आत्मा को प्राप्त हो जाऊँ।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि व्यवहार सम्यग्दर्शन पहले होता है। तदुपरांत वीतराग चारित्र का अविनाभावी निश्चय सम्यग्दर्शन बाद में होता है।

जिज्ञासा ३.- क्या सम्यग्दर्शन की पर्याय निश्चय व्यवहार दो रूप होती है?

समाधान - आचार्यों ने सम्यग्दर्शन की पर्याय दो रूप ही मानी है।

१.पंचास्तिकाय गाथा १०७ की टीका श्री जयसेनाचार्य ने कहा है-

'यद्यपि क्वापि निर्विकल्पसमाधिकाले निर्विकार शुद्धात्मरुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं स्पृशति तथापि प्रचुरेण बहिरंगपदार्थरुचिरूपं यद्व्यवहार सम्यक्त्व तत्स्येव तत्र मुख्यता।'

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि निश्चय सम्यक्त्व तो कभी-कभी होता है जब कि व्यवहार प्रचुरता से रहता है। आचार्यों ने व्यवहार सम्यक्त्व को सराग सम्यक्त्व और निश्चय सम्यक्त्व को वीतराग सम्यक्त्व कहा है।

२. समयसार गाथा - २११-२१२ की टीका में (जयसेनाचार्य जी ने)कहा है-

'किंच-रागी सम्यग्दृष्टि र्न भवतीति भणितं भवद्भिः। तर्हि चतुर्थ पंचम गुण स्थानवर्तिनः तीर्थंकर-कुमार-भरत-सगर-राम-पाण्डवादयः सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति ? इति। तत्र मिथ्यादृष्ट्यापेक्षया त्रिचत्वारिंशप्रकृतीनां बन्धाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति।'

आपने कहा कि रागी सम्यग्दृष्टि नहीं होता। तब तो चतुर्थ पंचमगुणस्थानवर्ती कुमार अवस्था के तीर्थंकर, भरत, सगर, चक्रवर्ती, रामचंद्र, पाण्डव, आदि सम्यग्दृष्टि नहीं होना चाहिए।

समाधान- नहीं, यह बात नहीं है। मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ४३ प्रकार के बंध का अभाव होने से वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं।

३.प्रश्न १ के समाधान में परमात्म प्रकाश का जो उदा. दिया है वह यहाँ भी पढ़ने योग्य है।

४. रयणसार गाथा ४ में कहा है- *'सम्मत्तरयणसारं मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणियं।*
तं जाणिज्जइ णिच्छयववहारसरूवदो भेदं।'

अर्थ-सम्यग्दर्शन समस्त रत्नों में सारभूत रत्न है और मोक्षरूपो वृक्ष का मूल है, इसके निश्चय और व्यवहार ऐसे दो भेद जानने चाहिए।

५. बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका गाथा ४१ में पृ. १४० पर इसप्रकार कहा है-

'शुद्धजीवादितत्त्वार्थ श्रद्धानलक्षणं सरागसम्यक्त्वाभिधानं व्यवहारसम्यक्त्वं विज्ञेयम्।... वीतरागचारित्राविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति।'

अर्थ-शुद्ध जीव आदि तत्त्वार्थों का श्रद्धानरूप सरागसम्यक्त्व व्यवहार सम्यक्त्व जानना चाहिए और वीतराग चारित्र के बिना नहीं होने वाला वीतराग सम्यक्त्व नामक निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिए।

६. भगवती आराधना में कहा है-

'इह द्विविध सम्यक्त्वं सरागसम्यक्त्वं वीतराग सम्यक्त्वं चेति।....तत्र प्रशस्त- रागसहितानां श्रद्धानं सराग सम्यग्दर्शनं। रागद्वयरहितानां क्षीणमोहावरणानां वीतराग सम्यग्दर्शनं।'

अर्थ-सम्यक्त्व दो प्रकार का है। सरागसम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व । तहाँ प्रशस्तराग सहित जीवों का सराग सम्यक्त्व है और प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकार के राग से रहित क्षीणमोह वीतरागियों का सम्यक्त्व वीतराग सम्यक्त्व है।

उपरोक्त प्रमाण के अनुसार सम्यग्दर्शन की पर्याय दो रूप होना सिद्ध है।

जिज्ञासा ४.- क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक के जीव को नरक में निश्चय सम्यग्दर्शन है या व्यवहार, या दोनों?

समाधान- नरक में श्रेणिक राजा के जीव को मात्र व्यवहारसम्यग्दर्शन है, निश्चय-सम्यग्दर्शन नहीं। क्यों कि निश्चय सम्यग्दर्शन तो निश्चय चारित्र का अविनाभावी है। नरक में निश्चय चारित्र नहीं होता। इसलिए निश्चय सम्यक्त्व भी नहीं है। जैसा कि समयसार गाथा १३ की टीका में श्री जयसेनाचार्य ने कहा है -

'आर्तरौद्रपरित्यागलक्षणनिर्विकल्पसामांयिकस्थितनांयच्छुद्धात्मरूपस्यदर्शनमनुभवनमव लोकनमुपलब्धिः संवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिरनुभूतिस्तदेव निश्चयनयेन निश्चयचारित्रा-विनाभावि निश्चयसम्यक्त्वं वीतरागसम्यक्त्वं भण्यते।'

अर्थ-आर्तरौद्र परिणामों के त्यागरूप लक्षण है जिसका, ऐसी निर्विकल्प सामायिक में स्थित जीव के जो शुद्धात्मरूप का दर्शन अनुभवन, अवलोकन, उपलब्धि, संवित्ति, प्रतीति, ख्याति, अनुभूति होती है वही निश्चयनय के निश्चयचारित्र का अविनाभावी निश्चयसम्यक्त्व वीतरागसम्यक्त्व कहा है।

बृहद्द्रव्यसंग्रह में तो महाराजा भरत के क्षायिक सम्यग्दर्शन को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है। - *' एषां भरतादीनां यत् सम्यग्दर्शनं तत्तुं व्यवहार सम्यग्दर्शनं।'*

ब्र.

जिज्ञासा ५.- औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक इन तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों को क्या(आत्मानुभूति रहित) आत्मविश्वास एक सदृश होता है?

समाधान-समयसार गाथा १३ की टीका जो उपर प्रश्न क्र.४ के उत्तर में लिखी गयी है, उसके अनुसार शुद्ध आत्मस्वरूप की अनुभूति को निश्चय सम्यक्त्व या वीतराग सम्यक्त्व कहा है। तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों को सविकल्प अवस्था में शुद्धात्मा की अनुभूति रहित आत्म विश्वास तो होता है जो क्षायिक और उपशम सम्यग्दृष्टियों के निर्दोषरूप होता है। जब कि क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के सदोषरूप होता है। तदनुसार औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के आत्मविश्वास एक सदृश कहा गया है और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने के कारण भिन्न रूप से कहा गया है। यह विश्वास निर्विकल्प समाधिकाल में शुद्ध आत्मानुभूति सहित होता है और सविकल्प अवस्था में शुद्ध आत्मानुभूति रहित होता है।

जिज्ञासा ६.- प्रवचनसार गाथा ८०-*जो जाणादि अरिहंत* --- एवं समयसार गाथा ३२० -*दिट्ठी जहेव णाणं* --- की श्रीमद् प.पू. जयसेनाचार्य विरचित तात्पर्यवृत्ति टीकाओं में क्रमशः करणलब्धिपूर्वक अविकल्प स्वरूप की प्राप्ति तथा भव्यक्त्व शक्ति की व्यक्तता का स्वरूप बतलाया है। क्या इसका अर्थ मात्र आत्मविश्वास होना ही सम्यग्दर्शन माना गया है?
समाधान-उपरोक्त दोनों गाथाओं की टीका में अविकल्प स्वरूप की प्राप्ति तथा भव्यत्व शक्ति की व्यक्तता का जो उल्लेख आया है उसका तात्पर्य मात्र आत्मविश्वास- रूप सम्यग्दर्शन ही है। क्यों कि उपरोक्त समाधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि शुद्ध आत्मस्वरूप की अनुभूति तो निश्चय चारित्र के अविनाभावी, निश्चय सम्यक्त्व होने पर ही होती है।

जिज्ञासा ७.- प्रवचनसार गाथा ८० की तात्पर्यवृत्ति के प्रारंभ में लिखित-
'अथ चत्तापावारंभं---(गाथा ७९) *इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादिविनाशाभावे शुद्धात्मलाभो न भवति'*...का क्या अर्थ है?
समाधान-इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है कि मोहनीय कर्म का नाश इसके बिना नहीं हो सकता और मोहादि के नाश के बिना शुद्धात्मा का लाभ नहीं होता अर्थात् वीतरागता प्राप्त नहीं होती । गाथा ७९ तात्पर्यवृत्ति में स्पष्ट कहा गया है कि जो साधक शुभोपयोग की परिणतियों में परिणमन करके अंतरंग में मोही होकर यदि निर्विकल्प समाधि लक्षण पूर्व में कहे हुए मोह रहित शुद्ध आत्मतत्त्व के विरोधी मोह आदि को नहीं छोड़ता। तो वह जिन या सिद्ध के समान अपने आत्मस्वरूप को नहीं जान पाता। अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए मोहादि का विनाश होना आवश्यक होता है और मोहादि के विनाश के लिए शुद्धोपयोग आवश्यक है।

यहाँ मोह का अभाव शुद्धोपयोग से ही होता है यह जो अवधारणा दी गयी है इसका अर्थ दर्शनमोह नहीं, चारित्रमोह लगाना चाहिए।

जिज्ञासा ८.- प्रायोग्यलब्धि में, करणलब्धि में तथा अनिवृत्तिकरणोपरांत होने वाले आत्मा के विश्वास में क्या अंतर है?

समाधान-उपरोक्त दोनों दशाओं में होने वाले आत्मा के विश्वास में अंतर मानना चाहिए।

१. प्रायोग्यलब्धि में आत्मविश्वास नहीं होता। यहाँ आत्मविश्वास वचन तक सीमित है। भावरूप नहीं होता।

२. करणलब्धि में आत्मविश्वास होना प्रारंभ हो जाता है परंतु मिथ्यात्व का सद्भाव होने के कारण पूर्ण आत्मविश्वास नहीं हो पाता।

३. अनिवृत्तिकरण के उपरांत मिथ्यात्व का उपशम हो जाने के कारण आत्मविश्यास पूर्ण प्रगट हो जाता है।

सच तो यह है कि जब तक मिथ्यात्व का उदय है तब तक तत्त्वश्रद्धानमूलक आत्मविश्वास बिलकूल संभव नहीं है।

जिज्ञासा ९. - देशव्रती श्रावक एवं अविरत सम्यग्दृष्टि के आत्मविश्वास में क्या कुछ फर्क होता है? क्यों कि आपके अनुसार आत्मानुभूति मुनि/संयमी को ही होती है?

समाधान-यदि सम्यक्त्व समान है तो देशव्रती श्रावक और अविरत सम्यग्दृष्टि के आत्मविश्वास में कोई अंतर नहीं होता हैक्यों कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अनुदय आत्मविश्वास में कोई विशेषता लाने में समर्थ नहीं है। शुद्ध आत्मतत्त्व की अनुभूति तो वीतराग चारित्र के अविनाभावी वीतराग सम्यक्त्व के काल में ही संभव है। जो मात्र शुद्धोपयोगी मुनियों को ही होती है।

जिज्ञासा १०.- आपके हिसाब से मुनिराजों को ही आत्मानुभूति होती है तो गृहविरत श्रावकों (क्षुल्लक,ऐलक,आर्यिका)को भी स्वात्मानुभूति नहीं होती होगी?

समाधान-चतुर्थ,पंचम एवं छठे गुणस्थानवर्ती शुभोपयोगी जीवों को आत्मविश्वास मात्र होता है, आत्मानुभूति अथवा आत्मानुभवरूप आनंद नहीं होता। क्यों कि संज्वलन कषाय के मंद उदय में आत्मलीन होने पर ही आत्मानुभूति होती है। जैसा कि उपर के सभी आगम प्रमाणोंद्वारा स्पष्ट किया गया है। आत्मानुभूति, अभेद रत्नत्रय, परमोपेक्षा संयम, शुद्धोपयोग ये सब एकार्थवाची हैं। शुभोपयोग में स्थित मुनिराज को भी शुद्धात्मानुभूति नहीं होती।

- श्री परमात्म प्रकाश गाथा १४४ की टीका में कहा है कि -

'मनः शुद्धयभावे गृहस्थानां तपोधनवत् शुद्धात्मभावना कर्तुनायातीति। तथा चोक्तं- कषायैरिन्द्रियैर्दुष्टैः: व्याकुलीक्रियते मनः यतः यतः कर्तुं न शक्यंतेभावना गृहमेधिभिः।

अर्थ-मन की शुद्धि के बिना गृहस्थों को यति के समान शुद्धात्मा की भावनाकरना नहीं बनता है। कहा भी है-कषायों और दुष्ट इन्द्रियों से मन व्याकुल रहता है। इसलिए गृहस्थों को आत्मभावना करना शक्य नहीं है।

जिज्ञासा ११.- जैनों और जैनेतर मतावलंबियों के आत्मा के विश्वास में क्या कुछ अंतर होता है ? क्यों कि अन्य मतावलंबी भी आत्मा के होने में विश्वास रखते हैं?

समाधान- जैनों और जैनेतरों के आत्मविश्वास में जमीन आसमान का अंतर है। जैसे बौद्ध तथा वैशेषिक आत्मा का अभाव होने को मोक्ष मानते हैं, जो जैनमत में बिलकुल गलत है। योगमत वाले आत्मा के बुद्धि, सुख आदि गुणों का नाश होने को मोक्ष मानते हैं जो बिलकुल गलत है। चार्वाक मत वाले आत्मा को पदार्थरूप से स्वीकार ही नहीं करते, पुनर्जन्म को नहीं मानते। सांख्य मत वाले आत्मा को सदा शुद्ध मानते हैं। आत्मा को कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता नहीं मानते, सर्व व्यापक मानते हैं जो नितांत गलत है।

जैनों के अलावा जैनेतर कुछ मत आत्मा का अस्तित्व तो मानते हैं परंतु आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिचय न होने के कारण उसकी कर्मबद्ध, अशुद्ध अवस्था तथा उसके शुद्ध होने के उपायों का सही ज्ञान न होने के कारण अज्ञानी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, उनके आत्मविश्वास रंचमात्र भी नहीं है। उनका आत्मविश्वास गृहित मिथ्यात्व सहित है जब कि जैनियों का उससे रहित है।

जिज्ञासा १२.- वह आत्मा जिसका कि जैनों सम्यग्दृष्टियों को विश्वास होता है वह द्रव्यकर्म,नोकर्म,(शरीर),भावकर्म(मोह,राग,द्वेष) से रहित आत्मा होता है या इनके सहित होता है?

समाधान- सम्यग्दृष्टि तो द्रव्यकर्म,भावकर्म,नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा का ही श्रद्धान करता है पर उस शुद्ध आत्मा की अनुभूति वीतराग परिणति में ही होती है जो कि वीतराग चारित्र के होने पर ही संभव है।

जिज्ञासा १३.- अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है या नहीं? यदि है तो उसके चारित्र कौनसा प्रकट हुआ कहलायेगा? मिथ्याचारित्र भी उसके नहीं है?

समाधान- तत्त्वार्थसूत्र के प्रारंभ में आ. उमास्वामी महाराज ने यह सूत्र लिखा है -

- सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।

अर्थ- सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है । इसकी टीका में आ. पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है कि-

सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येतत् त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः।

अर्थ - सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर साक्षात् मोक्ष का मार्ग है ऐसा जानना चाहिए। इस आगम प्रमाण के अनुसार अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी नहीं है। उसके कौनसा चारित्र हुआ इस संबंध में गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा १२ में स्पष्ट कहा है कि - *'चारित्तं णत्थि जदो अविरद अन्तेसु ठाणेसु।'*

अर्थ - अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान तक चारित्र नहीं होता है।

- मोक्षमार्ग प्रकाशक में पं. टोडरमलजी ने ९ वें अधिकार में स्पष्ट लिखा ह कि-

'तातै अनंतानुबंधी के गये किछु कषायानि की मंदता तो हो है परंतु ऐसी मंदता न हो हैं, जाकरि कोऊ चारित्र नाम पावै .....जहाँ ऐसा कषायानि का घटना होय जाकरि श्रावकधर्म व मुनिधर्म का अंगीकार होय तहाँ ही चारित्र नाम पावै हैं। ...मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थानानि विषै असंयम नाम पावै है।'

यदि चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र का अंश माना जाय तो वहाँ चारित्र की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होना चाहिए। परंतु श्री षट्खण्डागम में स्पष्ट कहा है -

'असंजदं सम्माइट्ठित्ति को भावो, उवसमिओवा खइयो वा खओवसमिओ वा भावो।।५।। ओदइएण भावेण पुणो असंजदो।'

अर्थ-असंयतसम्यग्दृष्टि के कौनसा भाव है?औपशमिक भाव भी है,क्षायिक भाव भी है, और क्षायोपशमिक भाव भी है।।५।। असंयत सम्यग्दृष्टि का असंयत भाव औदयिक है।

- राजवार्तिक-१-१ में इसप्रकार कहा है-

'सम्यग्दर्शनस्य सम्यग्ज्ञानस्य वा अन्यतरस्वात्मलाभे चारित्रमुत्तरं भजनीयं।'

अर्थ-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान इन दोनों में से एक का आत्मलाभ होते, उत्तर जो चारित्र है वह भजनीय है। अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर सम्यक् चारित्र होना अवश्यंभावी नहीं है।

-आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण में कहा है-

'समेतमेव सम्यक्त्व ज्ञानाभ्यां चरितं मतम्।
स्यातां बिनापितेतेन गुणस्थाने चतुर्थके।। ७४-५४३

अर्थ- सम्यक् चारित्र तो सम्यग्दर्शन व सम्यज्ञान सहित होता है किन्तु चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र के बिना होते हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के सम्यक्चारित्र नहीं होता। और जब तक सम्यक्चारित्र नहीं तब तक मोक्षमार्गी भी नहीं है।

- जैसा कि प्रवचनसार गाथा २३६ की टीका में अमृतचंद्राचार्य ने कहा है-

'अथ आगम ज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान संयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति।।'

अर्थ-इससे आगमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान तथा संयतत्व के अयुगपतत्व वाले के मोक्षमार्ग घटित नहीं होता।

- मोक्षमार्ग प्रकाशक में पं. टोडरमलजी ने कहा है-

' यहाँ प्रश्न जो असंयत सम्यग्दृष्टि कै तो चारित्र नाहीं, वाकै मोक्षमार्ग भया है कि न भया है? ताका समाधान-मोक्ष याकै होसी, यहु तो नियम भया। तातै उपचारतें याके मोक्षमार्ग भया भी कहिए। परमार्थ तें सम्यक्चारित्र भये ही मोक्षमार्ग हो है। ---- तैसे असंयत सम्यग्दृष्टि कै वीतरागभाव रूप मोक्षमार्ग का श्रद्धान भया तातैं वाको उपचारतें मोक्षमार्गी कहिए। परमार्थ तें वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी।'

जिज्ञासा-१४. -सम्यक्त्वाचरण (मोक्षपाहुड गाथा ५ से १०) एवं स्वरूपाचरण चारित्र में क्या अंतर है?

समाधान-स्वरूपाचरण चारित्र नामक चारित्र का वर्णन किसी भी आचार्य ने नहीं किया। यह तो पंचाध्यायीकार पाण्डे राजमलजी की कल्पना मात्र है। आ. कुंदकुंद ने चारित्रपाहुड गाथा ५ से १० तक जो सम्यक्त्वाचरण चारित्र का वर्णन किया है। उसका संबंध सम्यक् चारित्र से बिलकुल नहीं है। आ. कुंदकुंद ने २५ दोषों से रहित और अष्ट अंग से सहित सम्यग्दर्शन को धारण करना सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा है। सम्यक् चारित्र को संयमाचरण चारित्र नाम से अलग कहा है। इस संयमाचरण चारित्र को धारण करने वाला ही मोक्षमार्गी कहलाता है। जिसके पास सम्यक्त्वाचरण चारित्र नहीं है, उसके पास सम्यग्दर्शन भी नहीं है ऐसा समझना चाहिए । शास्त्रों में स्वरूपाचरण चारित्र नामक चारित्र तो नहीं कहा पर - परमात्मप्रकाश गाथा २-३९ की टीका में ऐसा जरूर कहा है -

' रागद्वेषाभाव लक्षणं परमं यथाख्यातरूपं स्वरूपेचरणं निश्चयचारित्रं भणति। इदानीं तदभावेऽन्यच्चारित्रमाचरन्तु तपोधनाः ॥'

अर्थ-रागद्वेष का अभाव जिसका लक्षण है ऐसा परम यथाख्यातरूप स्वरूप में आचरण निश्चयचारित्र है। वर्तमान में उसका अभाव होने से मुनिगण अन्य चारित्र का आचरण करें।

सम्यक्त्वाचरण तो चतुर्थ गुणस्थान में होता है परंतु स्वरूप में आचरण रूप चारित्र तो ग्यारहवें गुणस्थान में कहा गया है, जैसा ऊपर प्रमाण है। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के साथ-साथ उसके अनुकूल आचरण भी होने लगता है। वही सम्यक्त्वाचरण कहा गया है।

जिज्ञासा १५.- मोक्षमार्ग में प्रगट होने वाला संवर-निर्जरा तत्त्व क्या शुभभाव रूप भी है या वीतंराग भाव / शुद्धभाव रूप ही है?

समाधान- मोक्षमार्ग में प्रगट होने वाला संवर, निर्जरा तत्त्व शुभभाव रूप भी है और वीतरागभाव रूप भी है। श्री जय धवला पुस्तक १ पृष्ठ ६ पर इसप्रकार कहा है-

'सुहसुद्ध परिणामेहिं कम्मखया भावे तक्खयाणुववत्तीदो।'

अर्थ- यदि शुभ परिणामों और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता।

आ.वीरसेन महाराज तो धवला पुस्तक १३ पृष्ठ ८१ पर इसतरह घोषणा कर रहे हैं-

'मोहणीयविणासे पुण धम्मज्झाणंफलं, सुहुमसाम्परायचरिमसमए तस्स विणासुवलंभादो॥'

अर्थ-मोहनीय का नाश करना धर्म्यध्यान का फल है, क्यों कि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के अंतिम समय में उसका विनाश देखा जाता है। -श्री राजवार्तिक १-४-१८ में कहा है-

'पूर्वोक्तानामाश्रव द्वाराणां शुभपरिणामवशान्निरोधः संवराः॥'

अर्थ-पूर्वोक्त मिथ्यादर्शनादि आस्रव द्वारों का शुभ परिणामों के वश से निरोध होना संवर

है। धर्म्यध्यान शुभभाव है, अतः शुभभाव को भी मोक्षमार्ग में प्रकट होने वाले संवर निर्जरा तत्त्व रूप मानना चाहिए।

जिज्ञासा १६.- मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि जो नवमें ग्रैवेयक तक जाते हैं तथा उन्हें ११ अंगों तक का ज्ञान प्रकट हो जाता है क्या उनको आत्मा का विश्वास नहीं होता? क्या उनके संवर-निर्जरा तत्त्व प्रकट होते हैं या नहीं?

समाधान-नहीं होते । क्यों कि उन्हें विपरिताभिनिवेश रूप मिथ्यात्व का उदय रहता है। मिथ्यात्व रहते हुए व्यवहार सम्यक्त्व रूप आत्म विश्वास संभव नहीं।

जिज्ञासा १७.-धर्म्यध्यान के स्वामी चौथे से सातवें गुणस्थानवर्ती जीव कहे हैं। तब असंयमी सम्यग्दृष्टि के भी चारित्र का अंश प्रकट हुआ होना चाहिए। अन्यथा १६+२५=४१ प्रकृतिया का बध नहीं रुकता? अनतानबधो चारित्रमाह का प्रकति का अनदय/अप्रशस्त उपशम/क्षय ही कारण है। इस चारित्र के अंश का नाम आगम में कहीं कुछ आया हो तो स्पष्ट करें?

समाधान-चतुर्थ गुणस्थान में कषाय की एक चौकड़ी का अभाव होता है,परंतु उसें संयम रूप चारित्र नाम नहीं मिलता है। श्री जयधवला १६/४० के अनुसार चारित्र के विषय में अनंतानुबंधी का कार्य यह है कि वह अप्रत्याख्यानावरण आदि के कषायों के उदय प्रवाह को अनंत कर देती है। इसलिए चारित्र में अनंतानुबंधी चतुष्क का व्यापार निष्फल नहीं है, परंतु वह किसी चारित्र का घात नहीं करती। अतः उसके जाने पर कोई चारित्र प्रकट नहीं होता।

आपकी यह धारणा ठीक नहीं है कि बिना चारित्र का अंश प्रकट हुए कर्मप्रकृतियों का बंध नहीं रुकना चाहिए, क्यों कि अभव्य जीव के भी प्रायोग्यलब्धि में ३४ बंधापसरणों में ४६ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। जब कि वहाँ सारी कषायें हैं और चारित्र का अंश भी नहीं है। सासादन गुणस्थान में भी अनंतानुबंधी आदि समस्त कषायों का सद्भाव रहते हुए भी १६ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है,तब वहाँ कौनसा चारित्र प्रगट होना मानेंगे। इसलिए यह धारणा उचित नहीं है कि बिना चारित्र का अंश प्रकट हुए कर्मप्रकृतियों का बंध नहीं रुकता।

अनंतानुबंधी के जाने से इतने अंशों में वहाँ कषाय अंश तो घटता है पर उसे शास्त्रों में कोई भी नाम नहीं दिया है। क्यों कि चतुर्थ गुणस्थान तक चारित्र का अंश भी नहीं होता।

जिज्ञासा १८.-समयसार गाथा १३- *'भूदत्थेणाभिगदा...*की आत्मख्याति टीका-अंत में- *'एवमसावेकत्वेनद्योतमानः शुद्धनयेनानुभूयत एव । या त्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेव । इति समस्तमेव निरवद्यम्।'*- इसका अर्थ स्पष्ट करें।

समाधान - उपराक्त पक्तिया का खलासा इसप्रकार ह कि जा शद्धनय क द्वारा अपन

आत्मा के शुद्ध स्वरूप का भान कर लेते हैं, अशुद्ध दशा को अशुद्धि के रूप में जान लेते हैं उनका यह वास्तविक ज्ञान ही आत्मख्याति नाम से कहा जाता है और आत्मा की इस शुद्धनय से जानी गयी अवस्था का विश्वास ही सम्यग्दर्शन है। शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दृष्टि प्राप्त हो सकती है और जब तक इसप्रकार आत्मा को नहीं जानता है तब तक पर्यायबुद्धि वाला होता हुआ मिथ्यादृष्टि ही है। अनादिकाल से इस जीव ने नैमित्तिक भावों में छिपी हुई इस आत्मज्योति को नहीं पहचाना था। उस आत्मज्योति को शुद्ध नय के द्वारा ही प्रकाशमान किया जा सकता है।

यह प्रसंग समयसार का है। इस ग्रंथ में वीतराग सम्यग्दृष्टि की ही प्रधानता है। जैसा कि आ. जयसेन ने विभिन्न स्थानों पर स्वयं टीका में कहा है कि इस ग्रंथ में मुख्य रूप से निर्विकल्प समाधि में स्थित सम्यग्दृष्टि का ही ग्रहण किया गया है, अन्य का गौण वृत्ति से किया है। अतः इसे उक्त आलोक में ही देखिएगा।

जिज्ञासा १९.- तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकालंकार प्रथम खण्ड पृष्ठ ५५५ पर -

'न हि चारित्र मोहोदय मात्राद्भवच्चारित्रं। दर्शन चारित्र मोहोदयजनितादचारित्र दभिभमेवेति साधयितुं शेक्य; सर्वत्रकारण भेदस्य फलाभेदकत्वप्रसक्तेः॥ सिद्धांतविरोधात्।

अर्थ-इसके हिंदी अर्थ में पं.माणिकचंद जी कौंदेय न्यायाचार्य जी ने चतुर्थ गुणस्थानवर्ती का स्वरूपाचरण चारित्र अचारित्र में कहा है तथा जैन सिद्धांत प्रवेशिका में पं. गोपालदास जी बरैया ने प्रश्न १११/११२ में स्वरूपाचरण चारित्र कहा है। क्या आपको यह मान्य है?

समाधान-मैंने ऊपर प्र.नं. १४ के उत्तर में स्पष्ट कहा है कि किसी भी आचार्य ने अपने द्वारा रचित किसी भी ग्रंथ में स्वरूपाचरण चारित्र नाम का कोई चारित्र उल्लखित नहीं किया है। पं. माणिकचंद जी कौंदेय ने स्वरूपाचरण चारित्र को अचारित्र माना है और पं. गोपालदासजी बरैया ने स्वरूपाचरण चारित्र का कथन किया है। उसे मात्र सम्यक्त्वाचरण चारित्र का पर्यायवाची कहा जा सकता है परंतु सम्यक् चारित्र में गर्भित नहीं किया जा सकता। यह भी लिखना उचित होगा कि आ.कुंदकुंद ने अनंतानुबंधी के अभाव से सम्यक्त्वाचरण चारित्र नहीं माना है। अन्यथा तृतीय गुणस्थान में भी सम्यक्त्वाचरण मानना पड़ेगा जो गलत होगा।

धर्म्यध्यान - आगम के आलोक में

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं॥.....भावपाहुड ६१॥
केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावो सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी॥ ..... नियमसार ९६॥

२७

पं.ब्र. हेमचंद्र जैन 'हेम'(भोपाल) द्वारा लिखित जवाब-

दि. ३०-०९-२००५/०१.११.२००५

आदरणीय आगमवेत्ता विद्वद्वर श्री पं. रतनलालजी बैनाड़ा, जैन, सादर जायजिनेंद्र।

आपका २४.८.०५ का पत्र मेरे भोपाल पते से रिडाईरेक्ट होकर यहाँ देवलाली (नासिक-महाराष्ट्र) पते पर प्राप्त हुआ। मैं १ माह से बाहर(चैन्नई,पोन्नूर)गाँव में था। वहाँ पर्युषण पर्व में एकांत स्थान-श्री कुंदकुंदाचार्य देव की तपोभूमि में दसम प्रतिमाधारी मेरे मित्र ब्र. आदिनाथन के साथ तत्त्वचर्चा का लाभ लेता था। क्षमावाणी पर्व पर उत्तम क्षमा चाहता हूँ। मैंने अपनी जिज्ञासाओं का समाधान जिनभाषित पत्रिका में अगस्त-सितंबर के अंक में भी नहीं पाया तो सोचा शायद शायद समाधान नहीं आयेगा। परंतु आपने भारी श्रम कर समाधान करने का प्रयास इस पत्र में किया है। तदर्थ बहुत बहुत धन्यवाद। साथ ही आपने आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में जिज्ञासा-समाधानार्थ उपस्थित होने का सुझाव दिया है। स्वास्थ्य अनुकूलता रही तो अवश्य ही आगम-अध्यात्म की गहन तत्त्वचर्चा समाधान हेतु, संत समागम हेतु समय निकाल कर सूचित करूँगा।

आदरणीय बैनाड़ा जी ! आप आगमवेत्ता है। ज्ञान की निर्मलता के लिए आगम के आलोक में जिज्ञासाओं का समाधान खोजना भ्रांतियों में स्थित होना तो नहीं माना जा सकता?आगम अगाध है। 'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे।' आप आ.क.पं. टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार से भी समाधान प्रस्तुत करते हैं, फिर भी उनके सर्व कथनों को क्यों नहीं मान्य करते? आप आत्मविश्वास/आत्मा के विश्वास को एवं आत्मानुभूति को एक नहीं मानते। क्षायिक सम्यग्दृष्टि को भी निश्चयसम्यक्त्वी नहीं मानते, सराग व्यवहार सम्यक्त्वी ही मानते हो? जब कि क्षायिक नवलब्धियों में प्रथम लब्धि क्षायिक सम्यक्त्व ही है।

मिथ्यात्वी एवं सम्यग्दृष्टि जीवों के होने वाली कर्मोदयजन्य सुख-दुःखानुभूति में आप अवश्य ही अंतर तो मानते होंगे? सम्यक्त्वी को मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी चतुष्क के अभाव में निश्चित ही निराकुलत्व लक्षण आत्मोपलब्धि रूप सुखानुभूति का आंशिक प्रगटपना ही न माना जाये तो सम्यक्त्वोपलब्धि का क्या फायदा?

फिर श्रावक (देशसंयमी) के दो कषाय चौकड़ी के अभावरूप निराकुलत्वलक्षण सुखानुभूति नहीं मानी जाये तो फिर सकल संयमी(मुनिराज)के तीन कषायों के अभावरूप प्रचुर स्व-संवेदनरूप आत्मिक निराकुलत्वलक्षण आनंदानुभूति भी नहीं मानी जा सकेगी! और फिर चारों कषायों के अभाव में क्षीणमोहजिन में भी पूर्ण निराकुलत्वलक्षण सुख आनंदानुभूति का उद्भव भी नहीं माना जा सकेगा। अतः न्याय संगत यही है कि मिथ्यात्व एवं क्रोधादि कषायों का अभाव ही सुख है, स्वात्मानुभूति है। आ.क. पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ९ वाँ-(हिन्दी)पृ.३३७ में लिखा है-

'परमार्थतः कषायों के असंख्यात लोक प्रमाण स्थान हैं। उनमें सर्वत्र पूर्वस्थान से उत्तरस्थान में मंदता पायी जाती है, परंतु व्यवहार से उन स्थानों में तीन मर्यादाएँ की। आदि के बहुत स्थान तो असंयम रूप कहे, फिर कितने ही देश संयम रूप कहे, फिर कितने ही सकल संयम रूप कहे। उनमें प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थान तक जो कषाय के स्थान होते हैं वे सर्व असंयम ही के होते हैं। इसलिए कषायों की मंदता होने पर भी चारित्र नाम नहीं पाते। ***यद्यपि परमार्थ से कषाय का घटना चारित्र का अंश है, तथापि व्यवहार से जहाँ ऐसा कषायों का घटना हो, जिससे श्रावकधर्म या मुनिधर्म का अंगीकार हो, वहीं चारित्र नाम पाता है, सो असंयत में ऐसे कषाय घटती नहीं है, इसलिए यहाँ असंयम कहा है।*** *कषायों को अधिक-हीनपना होने पर भी जिस प्रकार प्रमत्तादि गुणस्थानों में सर्वत्र सकल संयम हि नाम पाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्वादि असंयत पर्यंत गुणस्थानों में असंयत नाम पाता है। सर्वत्र असंयम की समानता नहीं जानना।'*

आदरणीय बैनाड़ा जी ! आपने प.पू. ज्ञानसागरजी द्वारा कथित चतुर्थ गुणस्थान में मात्र आत्मा का विश्वास होने की बात मान्य की है और मैंने प.पू. मुनिवर वीरसागरजी महाराज (सोलापुर)द्वारा लिखित जैन अध्यात्म न्यायदीपिका का एवं समयसार(ता.वृ. टीका)का अध्ययन करके उनके पास ५ वर्षों तक १-१ माह जा-जाकर चतुर्थ गुण स्थान में मात्र आत्मानुभूति होने की बात मान्य की है। आप व मैं दोनों आगमप्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं, फिर भी विसंगति दूर क्यों नहीं हो रही है? इसके अलावा मैंने क्षु.द्वय (पू. क्षु.सुशीलमती माताजी,एवं पू.क्षु.सुव्रता माताजी-सुशिष्या प.पू.वीरसागरजी महाराज), श्री मनहरलालजी वर्णी एवं श्री जिनेंद्र जी वर्णी के सान्निध्य का लाभ लिया है, और आचार्यश्री विद्यासागरजी के पास बिलकुल समीप बैठकर ९ सालों तक अनेकों जगह तत्त्वचर्चाएँ की है और उन्होंने मुझे भरपूर लाभ भी दिया है,आशीर्वाद भी मिला है। किंतु उनके द्वारा कुछ तत्त्वों की विवेचना ऐसी प्रतीत होने लगी कि ये विवेचना आगम-अध्यात्म से मेल नहीं खाती प्रतीत होती और आगम-अध्यात्म के वेत्ता ४-५ विद्वानों, सर्वश्री पं. फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री,पं कैलाशचंदजी सि.शास्त्री,पं.जगन्मोहनलालजी सि.शा.,पं.पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं.देवेंद्रकुमारजी शास्त्री आदि से भी तत्त्वचर्चाएँ की। इन विद्वानों के सान्निध्य में आचार्यश्री के ससंघ धवला वाचनाओं में भी थोडा-थोडा भाग लिया परंतु निम्नलिखित चिंतनों ने मुझे झकझोर दिया,क्यों कि इनके आगम प्रमाण नहीं है.....।

(१)कर्मबंध प्रक्रिया में मिथ्यात्व अकिंचित्कर है।

(२)अनंतानुबंधी कषाय से मिथ्यात्व का(दर्शनमोह)का बंध होता है।

(३)विसंयोजित अनंतानुबंधी कषाय (चारित्रमोह) का बंध प्रथम गुणस्थान में आने पर अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण कषायों से होता है। भले जय धवला (कषाय पाहुड-भाग ४ पेज २४) में मूल में मिथ्यात्व से बंध होना लिखा हो।

(४)'दंसण मूलो धम्मो।' का अर्थ धर्म का मूल सम्यग्दर्शन नहीं, वरन् मुनिमुद्रा है।

मनिमद्रा स रहित को वदना मत करा।

(५)प्रशस्त कषाय (शुभ राग) से संवर, निर्जरा एवं पुण्यबंध दोनों होते हैं।

परमार्थतः पाप (असाता)की संवर-निर्जरा अर्थात् अघातिकर्मों का आना, रूक जाना एवं सत्ता में उनका संक्रमण हो साता रूप हो जाना तो मान्य ही है, परंतु आत्मगुण घातक घातिकर्म की संवर-निर्जरा मानना कैसे संभव हो? कारण अंतिम ग्रैवेयक तक जाने वाले बाह्य से निर्ग्रंथ महाव्रती द्रव्यलिंगी साधु को भी संवर-निर्जरा तत्त्व प्रगट मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं है? उसके तो शुभयोग से अघातिया कर्मों की पुण्यप्रकृतियों का बन्ध होता है।

व्यवहार करते-करते निश्चय वीतराग धर्म प्रगट हो जाता होता तो फिर श्वेताम्बर व दिगंबर मान्यता में फर्क ही क्या रहा?

यद्यपि यह एक त्रैकालिक सत्य है कि महाव्रतरूप द्रव्यलिंग धारण किये बिना भावलिंग(तीन कषाय के अभावरूप) दशा प्रगट नहीं होती, इसी प्रकार अणुव्रतादि (व्यवहार देश संयम)धारण किये बिना दो कषाय के अभावरूप पंचम गुणस्थान (श्रावक दशा)प्रगट ही नहीं होती। इसीप्रकार सच्चे देव-शास्त्र-गुरु एवं उनके द्वारा उपदिष्ट प्रयोजनभूत तत्त्वों के निणयबिना (ज्ञान बिना) करणलब्धिरूप विशद्धि हो नहीं प्रगट हातो ता निश्चय अविकल्प दशा रूप सम्यक्त्व की भी प्राप्ति नहीं होती। अतः व्यवहारपूर्वचर एवं सहचर दोनों रूप साधक अवस्था में होता है, अथवा बुद्धिपूर्वक ग्रहण किया ही जाता है। परंतु इस समीचीन व्यवहार (अशुभ से निवृत्ति एवं शुभ में प्रवृत्ति) मात्र से दर्शन मोह-चारित्र मोह हट जायेंगे ऐसी मान्यता, विश्वास बनाये रखना प्रकारान्तर से मिथ्यात्व का ही पोषण है। अभिप्राय की भूल मिटे बिना सम्यग्दर्शनादि प्रगट नहीं हो सकते। प्रवचनसार जी गाथा ७७ एवं समयसार गाथा १५४ इस बात की साक्षी है।

आ.क.पं.टोडरमलजी ने अभिप्राय की भूल सुधारे बिना सम्यक्त्व की उपलब्धि संभव ही नहीं होती-इसके लिए ही तो उन्होंने अपना जीवन बलिदान कर मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ की रचना की है। उन्होंने कहीं पर भी व्यवहार धर्म पालना नहीं छुडाया है। मेरा अपना निष्कर्ष है कि जैन धर्म जो कि सम्प्रदायातीत है, वस्तु के स्वभाव को दर्शाने वाला है, वह किसी भी प्रकार से मिथ्यात्व व कषायों का अथवा हिंसादि पापों का पोषने वाला नहीं है। और उपचरित व्यवहार धर्म को निश्चय धर्म का मात्र सहचारी साधन निरूपित करने वाला है। संक्षेप में कहूँ तो जो पाप में जाने नहीं देता और पुण्य को निश्चय वीतराग धर्म मानने नहीं देता, बस,यही जैन धर्म का सार है। तभी तो समयसार में १२ वीं गाथा की आत्मख्याति टीका में प. पू. अमृतचंद्राचार्य देव ने यह गाथा दी है।-

जई ज्ञिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं ।।

अस्तु । पापों में जाने की एवं पुण्य को निश्चय वीतराग धर्म मानने की जिनाज्ञा तो नहीं है परंतु पापों से बचने के लिए एवं निश्चय वीतराग धर्म (अकषायभाव)की प्राप्ति के लिए

ज्ञानी शुभाचरण(भूमिकानुसार व्यवहारधर्माचरण, प्रशस्तराग रूप आचरण को हन्त ! हस्तावलंबन जानते हुए)का आलंबन लेते हैं परंतु उसे साध्य जो निश्चय धर्म नहीं मानते।

परमार्थतः निश्चय या व्यवहार रूप दो प्रकार का मोक्षमार्ग या दो प्रकार का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होता है। उसका निरूपण दो प्रकार का होता है। सच्चे मोक्षमार्ग को/सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग निरूपित करना सच्चा मोक्षमार्ग/ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। और जो स्वयं मोक्षमार्ग या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है, परंतु उस सच्चे मोक्षमार्ग/सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निमित्त है, सहचारी है या पूर्वचर रूप से भी पाया जाता है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग/सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहना सो व्यवहार है व्यवहार मोक्षमार्ग है ,व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। स्वश्रितो निश्चयः, पराश्रितो व्यवहारःइस आगम वचन से स्वाश्रित/सच्चा निरूपण सो निश्चय और पराश्रित/उपचार निरूपण सो व्यवहार, किंतु ऐसा न मानकर दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। परमार्थतः साधक अवस्था में दोनों एकसाथ प्रगट होते हैं। अर्थात् उपचरित (व्यवहार) एवं अनुपचरित (निश्चय)। उपचरित (व्यवहार) सहचारी निमित्त है अनुपचरित(निश्चय) यथार्थ है।

दर्शन मोह+अनंतानुबंधी कषाय के उपशम-क्षयोपशम-क्षय के निमित्त से जो आत्मानुभूति/आत्मा का विश्वासरूप निश्चय सम्यक्त्व प्रगट होता है उसही को औपशमिक-क्षायोपशमिक-क्षायिक के भेद से तीन प्रकार का कहा जाता है। उसेही चारित्रगुण की सराग-वीतराग अवस्था का आरोप कर सराग-वीतराग सम्यक्त्व कहा जाता है। उसे ही ज्ञानगुण की अल्पज्ञ-सर्वज्ञ अवस्था का आरोप कर अवगाढ़-परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहा जाता है। तथा अन्य निमित्तादि की अपेक्षा आज्ञा सम्यक्त्वादि सम्यक्त्व के दस भेद भी किये हैं।(देखें-आत्मानुशासन श्लोक-११) परमात्मप्रकाश २/१८ की टीका जो आपने स्वयं प्रथम जिज्ञासा के समाधान में प्रस्तुत की है उसमें अति स्पष्ट रूप में यह बात कही गयी है कि-**सराग सम्यक्त्व को व्यवहार सम्यक्त्व एवं वीतराग सम्यक्त्व को निश्चय सम्यक्त्व कहा है, वह चारित्रमोह की स्थिरता-अस्थिरता की अपेक्षा से ही कहा है। उन तीर्थंकरादि महापुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है ऐसी रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व तो गृहस्थावस्था में भी है,परंतु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है। अतः उसे सरागावस्था में व्यवहार सम्यक्त्व कहा है।**

सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन बाबद अन्य आगम प्रमाण

१. **सर्वार्थसिद्धि** (१/२) : *तद् द्विविधं सराग-वीतराग विषय भेदात् ।*
प्रशम संवेगानुकम्पास्तिक्याद्याभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम्। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत्।

२. **राजवार्तिक** (१/२) : *सप्तानां कर्मप्रकृतिनां आत्यंतिकेऽपगमे सत्यात्म विशुद्धिमात्रमितरद्। वीतरागसम्यक्त्वमित्यच्यते ।*

३. **अमितगतिश्रावकाचा** (२): *वीतराग सरागं च सम्यक्त्वं कथितं द्विधा। विरागंक्षायिकं*

तत्र सरागमपरद्वयम् ॥६५॥.... इसमें क्षायिक को वीतराग एवं शेष दो(औपशमिक, क्षायोपशमिक)को सरागसम्यक्त्व कहा है।

४. पंचास्तिकाय (ता.वृ.१५०-१५१) *'यदायं जीवाःआगमभाषयाकालादिलब्धिरूप-मध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुख परिणाम रूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते तदा प्रथम-तस्तावन्मिथ्यात्वादि सप्तप्रकृतिनामुपशमेन क्षयोपशमेनच सराग सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्ठीभक्त्यादि रूपेण पराश्रित धर्म्यध्यान बहिरंग सहकारित्वेनानंतज्ञानादि स्वरूपोऽहमित्यादि भावना स्वरूपमात्माश्रितंधर्म्यध्यानं प्राप्य आगमकथितक्रमेणासंयत सम्यग्दृष्टयादि गुणस्थानचतुष्टय मध्ये क्वापि गुणस्थाने दर्शन मोह क्षयेण क्षायिक सम्यक्त्वं कृत्वा.....*

५. मोक्षमार्गप्रकाशक-(९/३२२).*'जैसा सप्ततत्त्वों का श्रद्धान छद्मस्थ के हुआ था,वैसा ही केवली भगवान के पाया जाता है इसलिए ज्ञानादिक की हीनता-अधिकता होने पर भी तिर्यंचादिक व केवली-सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही कहा है। ....केवली-सिद्ध भगवान रागादिरूप परिणमित नहीं होते, संसार अवस्था को नहीं चाहते, सो यह इस श्रद्धान का बल जानना।'*

६. पंचास्तिकाय(ता.वृ.१६०) *..... 'वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत जीवादिपदार्थ विषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं ग्रहस्थतपोधनयो समानं .....'*

७. श्लोकवार्तिक(२/१/२) *'सरागे वीतरागे च तस्य संभवतोऽञ्जसा।*

प्रशमादेरभिव्यक्तिः शुद्धिमात्राच चेतसः॥१२॥

यथैव हि विशिष्टात्मस्वरूपंश्रद्धानं सरागेषु संभवति तथा वीतरागेष्वपीति तस्याव्याप्तिरपि दोषो न शंकनीयः॥.....एतानि प्रत्येकं समुदितानि वा स्वस्मिन् स्वसंविदितानि परत्रकाया-वाग्व्यवहारविशेष लिंगानुमितानि सराग सम्यग्दर्शनं ज्ञापयंति.....'

अर्थ- जैसे ही दर्शनमोहनीय के उदय रहित विशिष्ट आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप श्रद्धान ठीक सराग सम्यग्दृष्टियों में संभवता है। इसी प्रकार वीतराग जीवों में भी स्वाभाविक परिणाम रूप श्रद्धान विद्यमान है। इस कारण उस सम्यग्दर्शन के लक्ष्मण में अव्याप्ति दोष होने की भी शंका नहीं करनी चाहिए। (लक्ष्य के पूरे भेद-प्रभेदों में जो लक्षण व्याप्ता है, वह अव्याप्तनाम का लक्षणाभास नहीं है। प्रशम,संवेग,अनुकंपा और आस्तिक्य इन चार स्वभावों से रागी जीवों में सम्यग्दर्शन की ज्ञप्ति हो जाती है और वीतराग जीवों में केवल आत्मा की विशुद्धि से ही सम्यग्दर्शन व्यक्त हो जाता है।

श्लोकार्थ-सराग व वीतराग दोनों में ही सम्यग्दर्शन संभव है। तहाँ सराग में तो प्रशमादिलक्षणों के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है और वीतराग में वह केवल चित्त विशुद्धि द्वारा लक्षित होता है। प्रशमादि गुण एक एक करके या समुदित रूप से अपनी आत्मा में तो स्वसंवेदनगम्य है और दूसरों में काय व वचन व्यवहार रूप विशेष ज्ञापक लिंगों द्वारा अनुमान गम्य है। इन प्रशमादि गुणों पर से सम्यग्दर्शन जान लिया जाता है।

उपसंहार-१.परमार्थतः सम्यक्त्व (विपरिताभिनिवेशरहित निज शुद्धात्मा का श्रद्धान

रूप परिणाम)एक ही प्रकार का होता है, उसे श्रद्धा/सम्यक्त्व गुण की अनैमित्तिक निर्मल पर्याय कहा है। इसको ही निसर्गज-अधिगमज भेद से दो प्रकार का, अंतरंग निमित्तापेक्षा से औपशमिक,क्षायोपशमिक,क्षायिक के भेद से तीन प्रकार का, बहिरंग निमित्तापेक्षा से आज्ञा,मार्ग,उपदेश,सूत्र,बीज,संक्षेप,विस्तार,अर्थ,अवगाढ़,परमावगाढ़ के भेद से दस प्रकार का कहा है। पुनश्च,निरूपण की अपेक्षा से निश्चय(वीतराग/स्वाश्रित)एवं व्यवहार(सराग/पराश्रित)ये दो प्रकार का तथा सहचारी शुभ,शुद्ध चारित्रापेक्षा सराग-वीतराग भेद से दो प्रकार का तथा ज्ञानापेक्षा अवगाढ़-परमावगाढ़ भेद से दो प्रकार का कहा है।

२. परमार्थतः सर्व सम्यग्दर्शन साक्षात् या परंपरा से अधिगमज ही होते हैं। जब कि चारित्र तो अधिगमज ही होता है। (देखो - श्लोकवार्तिक ३ रे सूत्र की टीका)

३. निश्चय सम्यग्दृष्टि को (जिसको दर्शनमोह + अनंतानुबंधी चतुष्क का उपशम, क्षयोपशम, क्षय हुआ है।) नियम से १) देव-गुरु-धर्म/देव-शास्त्र-गुरु का, २) तत्त्वार्थों का, ३)स्व-पर का,४)निज शुद्धात्मा का(द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म रहित निज ध्रुव-चिदानंदात्मा का) श्रद्धान होता ही होता है। निश्चय सम्यग्दृष्टि के ये चारों लक्षण युगपत् पाये जाते हैं। (देखो-मोक्षमार्ग प्रकाशक-९/३२८)

४. सम्यक्त्वप्राप्ति के लिए बहिरंग निमित्तों में १) जातिस्मरण २)वेदना ३) धर्मश्रवण (देशना) ४)जिनबिंब दर्शन ५)समवशरणादि विभूति युक्त जिन महिमा दर्शन ६)देवर्द्धि दर्शन आदि जो कहें हैं उन सब में देशना प्रधान है।

नियमसार गाथा ५३ में कहा है-'*सम्मतस्यणिमितं जिणसुतं तस्स जाणया पुरिसा।*
अन्तरहेऊ भणिदा दंसण मोहस्स खय पाहुदी॥५३॥

५. प्रवचनसार गाथा ८०- '*जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्तपज्जयतेहिं।*
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

इस गाथा में मोहो शब्द दर्शनमोह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है - ऐसा स्पष्टार्थ तात्पर्यवृत्ति टीका में पू.जयसेनाचार्य देव ने किया है तथा करणलब्धि में सविकल्प स्वसंवेदन एवं अनिवृत्तिकरणोपरान्त अविकल्प स्वरूप की प्राप्ति होना लिखा है।

-अब मैं मूल विषय पर जिज्ञासाक्रम से चर्चा करता हूँ।

जिज्ञासा १-निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन का क्या लक्षण है?परिभाषा रूप बताइए।

निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन की जो परिभाषाएँ आपने दी है वे सर्व मान्य ही है। परंतु उस पर से आपने क्या अर्थ निकाला? यही न कि गृहस्थ अवस्था में भी निश्चयसम्यक्त्व (निज शुद्धात्मा ही उपादेय)होता है तथापि चारित्र मोहोदय से होने वाली अस्थिरता वश वह सम्यग्दृष्टि जीव *'विषय-कषायवंचनार्थं संसार स्थिति छेदनार्थं वा पंचपरमेष्ठीषु गुणस्तवनादि भक्ति करोति।'* तब वह सराग सम्यग्दृष्टि कहलाता है। क्यों कि दर्शनमोह+ अनंतानुबंधी कषाय के उपशम, क्षयोपशम, क्षय से होने वाला विपरिताभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम ही निश्चय सम्यक्त्व है । ऐसा निश्चय सम्यक्त्वी जब

अशुभरागादि से बचने के लिए प्रशस्त शुभ राग के निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु आदि का अवलंबन ले प्रवर्तता है तब वह सराग सम्यग्दृष्टि कहलाता है और जब शुभाशुभ दोनों प्रकार के राग के अवलंबनों को छोड़कर निजशुद्धात्मा का आश्रय-अवलंबन लेता है तब वही जीव वीतराग सम्यग्दृष्टि कहलाता है। ऐसा विशिष्ट पुरुषार्थ मुख्यरूप से निर्ग्रंथ मुनिराज के ही होता है।

प्रमाणः पंचास्तिकाय गाथा-१६५ ता.वृ. टीका एवं तत्त्वप्रदीपिका टीका दोनों देखें।

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि शुद्ध संपओगादो।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।।१६५।।

तत्त्वप्रदीपिकाः सूक्ष्म पर.समय व्याख्यानमेतत्। अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिबलानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः।अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावज्ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीति अभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि राग लवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते। अथ न किं पुनर्निरंकुश रागकलिकलंकितान्तरंगवृत्तिरितरो जन इति।।१६५।।

तात्पर्यवृत्ति..... तदाकाले रसमयरतो भवति जीवो स पूर्वोक्तो ज्ञानी जीव इति। तद्यथा कश्चित्पुरुषोनिर्विकार शुद्धात्मभावनालक्षणे परमोपेक्षा संयमे स्थातुमीहते। तत्राशक्त सन् कामक्रोधाद्यशुद्ध परिणाम वंचनार्थं संसारस्थिति छेदनार्थं वा यदा पंचपीमेष्ठिषु गुणस्तवनादि भक्तिं करोति तदा सूक्ष्म पर समय परिणतः सन् सराग-सम्यग्दृष्टिर्भवति इति, यदि पुनः शुद्धात्मभावना समर्थोऽपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीतेकान्तेन मन्यते तदा स्थूल परसमय परिणामेनाज्ञानी मिथ्यादृष्टिर्भवति।ततः स्थितं अज्ञानेन जीवोनश्तीति। तथा चोक्तं -

केचिदज्ञानतानष्टाः केचिन्नष्टा : प्रमादतः।
केचिज्ज्ञानावलेपेन, केचिन् नष्टश्च नाशिताः।।१६५।।

प्रवचनसार गाथा १८१ ता.वृ.। तत्त्वप्रदीपिका भी देखें।

... शुभाशुभ शुद्ध द्रव्यावलम्बनमुपयोग लक्षणं चेति ....

अर्थ- प्रशस्त शुभ द्रव्यों(नवदेवता)का अवलंबन शुभोपयोग कहलाता है, पुण्यबंध होता है। अप्रशस्त-अशुभ द्रव्यों (पंचेंद्रिय विषयों) का अवलंबन अशुभोपयोग कहलाता है। पापबंध होता है। शुद्ध आत्मद्रव्य के अवलंबन से शुद्धोपयोग होता है।

निजशुद्धात्म(कारण परमात्मा,कारण समयसार) शुद्धध्येय रूप द्रव्य का अवलंबन शुद्धोपयोग कहलाता है। यह चतुर्थ गुणस्थान में नगण्य है, पंचम गुणस्थान में सामायिकादि काल में होता है। (प्रवचनसार गाथा २४८ ता.वृ. टीका)तथा छठवें-सातवें गुणस्थान में प्रमत्त-अप्रमत्तवस्थारूप मुनिराज के शुभ व शुद्धोपयोग प्रचुरता से होता ही रहता है।

देखो-प्रवचनसार गाथा २४८ की ता.वृ. टीका-

'ननु शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोग भावना दृश्यते। शुद्धोपयोगिनामपि

क्वापि काले शुभोपयोग भावना दृश्यते । श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्ध भावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति। परिहारमाह-युक्तमुक्तंभवता,परं किन्तु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते, ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोग भावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते। येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते तथापि शुद्धोपयोगिन एव । कस्मात् बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्रवननिम्बवनवदिति ॥२४८॥

जिज्ञासा २ - निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन एक साथ होते हैं या आगे पीछे?

महोदय ! आपने जो निष्कर्ष निकाला है कि व्यवहार सम्यग्दर्शन पहले होता है तथा निश्चयसम्यग्दर्शन बाद में होता है - यह सर्वथा गलत ही है। क्यों कि जो सम्यग्दर्शन दर्शनमोहनीय+अनंतानुबंधीकषाय के उपशम-क्षयोपशम, क्षय से (विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम रूप) प्रगट होता है वही निश्चयसम्यग्दर्शन है। जब तक आपको यह करणानुयोग सम्मत सम्यक्त्व का लक्षण स्वीकार्य नहीं होगा तब तक चित्त में ऐसी भ्रांति बनी रहेगी । जब भी सम्यग्दृष्टि का उपयोग/विचार शुभाशुभ रूप हो अशुद्धोपयोगरूप परिणमता है तब भी उसका श्रद्धान यथार्थ प्रतीतिरूप बना ही रहता है।

जब वह मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी या मिश्र मोहनीय के उदय से निश्चय सम्यक्त्वरूप परिणाम से गिर जायेगा, तभी वह मिथ्यादृष्टि, सासादन मिश्र परिणाम वाला हो जायेगा। इसलिए चतुर्थ, पंचम, षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव चारित्रिक अस्थिरतावश शुभाचरणरूप सराग अवस्था में आने पर भी चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों के विषयकषाय रूप अशुभराग में जा पड़ने पर भी वे सब सराग सम्यग्दृष्टि कहे जाने पर भी निश्चय सम्यग्दृष्टि ही बने रहते हैं। इसलिए पंचास्तिकाय (ता.वृ.१६०) में गृहस्थ व मुनिराज के सम्यग्दर्शन -ज्ञान समान कहा है। (कृपया सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन बाबद अन्य आगम प्रमाण-६ का विस्तार देखें।)

अस्तु । आ.क. पं. टोडरमलजी ने मो.मा.प्र.(हिन्दी)पृ. ३३०-३३१ पर इसका अति सुंदर समाधान प्रस्तुत किया है। उन्होंने पूर्वचर एवं सहचर व्यवहार को स्पष्ट करते हुए पूर्वचर व्यवहार को व्यवहाराभास सिद्ध किया है और निश्चय के साथ पाये जाने वाले व्यवहार को समीचीन व्यवहार कहा है तथा एक ही काल में दोनों का होना मान्य किया है। सम्यक्त्व के भेद और उनका स्वरूप इस शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने लिखा है। - अब इस सम्यक्त्व के भेद बतलाते हैं - ' वहाँ प्रथम निश्चय-व्यवहार का भेद बतलाते हैं। - विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान रूप आत्मा का परिणाम वह तो निश्चयसम्यक्त्व है क्यों कि यह सत्यार्थ सम्यक्त्व का रूप है। सत्यार्थ का नाम निश्चय है तथा विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान को कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है , क्यों कि कारण में कार्य का उपचार किया है , सो उपचार का ही नाम व्यवहार है।' वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव के देव-गुरु-धर्मादिक का सच्चा श्रद्धान है, उसी निमित्त से इसके श्रद्धान में विपरीताभिनिवेश का अभाव है। यहाँ विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है और देव-गुरु-धर्मादिक का

श्रद्धान है सो व्यवहार सम्यक्त्व है। इसप्रकार एक ही काल में दोनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। तथा मिथ्यादृष्टि जीव के देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान आभास मात्र होता है। और इसके श्रद्धान में विपरीताभिनिवेश का अभाव नहीं होता। इसलिए यहाँ निश्चय सम्यक्त्व तो है नहीं और व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है.क्यों कि इसके देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेश के अभाव को साक्षात् कारण नहीं हुआ। कारण हुए बिना उपचार संभव नहीं है। इसलिए साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी इसके संभव नहीं है।

अथवा इसके देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान नियमरूप होता है सो विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान को परंपरा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नहीं है तथापि मुख्यरूप से कारण है। तथा कारण में कार्य का उपचार संभव है, इसलिए मुख्य रूप परंपरा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टि के भी व्यवहार सम्यक्त्व कहा जाता है। (मो.मा.प्र.- पृ.३३१)

उपरोक्त विवेचन से तथा (कृपया सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन बाबद अन्य आगम प्रमाण-६ का विस्तार देखें।) इस में उद्घृत आगमप्रमाणों से कि वीतराग सम्यग्दर्शन को क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा औपशमिक, क्षायोपशमिक को सराग सम्यग्दर्शन कहा है यह भी भलीभाँति सिद्ध हुआ कि निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन आगे-पीछे नहीं वरन् एक ही काल में प्रगट होते हैं। पंचास्तिकाय ता.वृ. १६० टीका में तो स्पष्ट ही लिखा है कि-*वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत जीवादिपदार्थ विषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं गृहस्थतपोधनयोः समानं।....')*

साध्य-साधन की अपेक्षा से विचार किया जाय तो अवश्य ही यही कहा जायेगा कि व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है। जैसे कि व्यवहार रत्नत्रय साधन और निश्चय रत्नत्रय साध्य है। व्यवहार आचरण पूर्वचर भी होता है और सहचर भी। जब निश्चय साध्य प्रगट हो तब सहचर व्यवहार साधन यथार्थ व्यवहार साधन कहलाता है। व्यवहार मोक्षमार्ग एवं निश्चय मोक्षमार्ग की एवं उनके अवयव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्यवहार-निश्चयरूप परिभाषा आपने स्वयं जिज्ञासा१ के समाधान में समयसार गाथा-१५५ ता.वृ.टीका उद्घृत कर दे ही दी है। जो यथार्थ ही है।

निश्चय-व्यवहार ये दोनों परिणाम साधक अवस्था में (चतुर्थ-पंचम-षष्ठम गुणस्थानों में जहाँ बुद्धिपूर्वक ग्रहण-त्याग का विचार विकल्प वर्तता है)परस्पर सापेक्ष ही होते हैं, अर्थात् युगपत् ही होते हैं। निरपेक्ष हो तो मिथ्या होते हैं। पंचास्तिकाय-गाथा १७२ ता.वृ. टीका में स्पष्ट लिखा है-*अथैवं पूर्वोक्तं प्रकारेणास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्य ज्ञातव्यं तच्च वीतरागत्वं निश्चय व्यवहार नयाभ्यां: साध्यसाधकरूपेण परस्परसापेक्षाभ्यामेव भवति, मुक्तिसिद्धये न चे पुनर्निरपेक्षाभ्यामितिवार्तिकं। तद्यथा-ये केचन विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक् श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप निश्चय मोक्षमार्ग निरपेक्षं केवल शुभानुष्ठान रूपं व्यवहारनयमेव मोक्षमार्ग मन्यते तेन तु सुरलोकादिक्लेश परंपरया संसारं परिभ्रमंतीति, यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षणम् निश्चयमोक्षमार्गं मन्यते निश्चयमोक्षमार्गानुष्ठान शक्त्यभावान्निश्चयसाधकं शुभानुष्ठानं च कुर्वन्ति तर्हि सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया*

मोक्षं लभंते इंति व्यवहारैकान्त निराकारण मुख्यत्वेन वाक्य द्वयं गतं। ये पि केवल निश्चय नयावलंबिनः संतोपि रागादि विकल्प रहितं परम समाधिरूपं शुद्धात्मानमलभमाना अपि तपोधनाचरण योग्यं षडावश्यकादि अनुष्ठान श्रावकाचरण योग्यं दानपूजाद्यनुष्ठानं च दूषयंते तेप्युभय भ्रष्टाः संतो निश्चय व्यवहारानुष्ठान योग्यावस्थान्तरमजानन्तः पापमेव बध्नन्ति। यदि पुनः शुद्धात्मानुष्ठान रूपं मोक्षमार्गं तत्साधकं व्यवहार मोक्षमार्ग मन्यते तर्हि चारित्रमोहोदयात् शक्त्यभावेन शुभाशुभानुष्ठान रहिता अपि यद्यपि शुद्धात्मभावनासापेक्ष शुभानुष्ठानरत पुरुषसदृशा न भवन्ति तथापि सराग-सम्यक्त्वादिदान व्यवहार सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, परंपरया मोक्षं च लभन्ते-इति निश्चयैकान्त निराकरण मुख्यत्वेन वाक्य द्वयं गतम् । ततः स्थितमेतन्निश्चय व्यवहार परस्पर साध्यसाधक भावेन रागादि विकल्परहित परमसमाधिबलेनैव मोक्षं लभते ॥१७२॥

फलितार्थ (जिज्ञासा २ के बारे में) (मो.मा.प्र.पृ.३२५)

जैसे अणुव्रत, महाव्रत होने पर तो देशचारित्र, सकलचारित्र हो या न हो, परंतु अणुव्रत-महाव्रत हुए बिना देशचारित्र, सकलचारित्र कदाचित् नहीं होता, इसलिए इन व्रतों को अन्वय रूप कारण जानकर कारण में कार्य का उपचार करके इनको चारित्र कहा है। उसी प्रकार अरहंत देवादिक का श्रद्धान होने पर तो सम्यक्त्व हो या न हो, परंतु अरहंतादिक का श्रद्धान हुए बिना तत्त्वार्थश्रद्धान रूप सम्यक्त्व कदाचित् नहीं होता, इसलिए अरहंतादिक के श्रद्धान को अन्वयरूप कारण जानकर कारण में कार्य का उपचार करके इस श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है। इसीसे इसका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है।

'अरहंत देवादिक के श्रद्धान से कुदेवादिक का श्रद्धान दूर होने के कारण गृहित मिथ्यात्व का अभाव होता है, उस अपेक्षा इसको सम्यक्त्व कहा है। सर्वथा सम्यक्त्व का लक्षण यह नहीं है, क्यों कि द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्म के धारक मिथ्यादृष्टियों के भी ऐसा श्रद्धान होता है।' -(मो.मा.प्र.पृ.३२५)

इसप्रकार व्यवहार सम्यक्त्व पूर्वचर रूप से (सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीवके) पाया जाने पर ही उसे करणलब्धि पूर्वक अविकल्पस्वरूपोपलब्धि रूप निश्चय सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है, इसी हेतु से व्यवहार को पहले होता है कहा है, परंतु नियामकता नहीं है कि हो ही जायेगा। इसीप्रकार अणुव्रत/प्रतिमाधारी व्रती श्रावक होने पर दो कषायों के अभाव रूप निश्चय श्रावकपना रूप पंचम गुणस्थान हो जाता है, परंतु नियामकता रूप नहीं है कि हो ही जायेगा। इसीप्रकार महाव्रत धारण करने(जिनदीक्षा ग्रहण कर लेने)पर ही सामायिकादि शुद्धोपयोग के काल में तीन कषायों का अभाव होकर अप्रमत्त-प्रमत्तगुणस्थान प्रगट हो जाता है परंतु नियामकता रूप नहीं है कि हो ही जायेगा। जिन जीवों के मिथ्यात्वकर्म के उपशमादि होने पर चतुर्थ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान,अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होने जाने पर पंचम संयमासंयम गुणस्थान और प्रत्याख्यानावरण कषाय का भी अभाव हो जाने पर सकल संयम(अप्रमत्तादि)सप्तम-षष्ठम गुणस्थान की प्राप्ति हो जाती

है। वे ही क्रमशः निश्चय सम्यक्त्वी श्रावक व मुनि होते हैं। तभी व्यवहार सम्यक्त्व, अणुव्रत व महाव्रत को पूर्वचरापेक्षा साधन संज्ञा होती है। तब वे सहचररूप, कारण रूप- साधन रूप विद्यमान रहते हैं।

जिज्ञासा ३ - क्या सम्यग्दर्शन की पर्याय निश्चय-व्यवहार दो रूप होती है?

महोदय, आपने यह जो निष्कर्ष निकाला है कि निश्चय सम्यक्त्व तो कभी-कभी होता है जब कि व्यवहार सम्यक्त्व प्रचुरता से रहता है, यह नितान्त भ्रमपूर्ण है। इसका खुलासा मैं जिज्ञासा १ व २ में कर ही आया हूँ। परमार्थतः निश्चय-व्यवहार दो रूप से निरूपण किया जाता है। निश्चय तो अनिर्वचनीय ही होता है और उसकी बाह्य व्यवहार लक्षणों से पहचान करायी जाती है। वस्तुतः सराग/व्यवहार सम्यक्त्व तो निश्चय/वीतराग सम्यक्त्व का ज्ञापक निमित्त है जो साधक अवस्था में पाया जाता है। अरहंतावस्था में तो सराग सम्यक्त्व व सराग चारित्र (महाव्रतादिरूप व्यवहार चारित्र)का अभाव ही हो जाता है। जब कि क्षायिक सम्यक्त्व व क्षायिक चारित्र आदि अनंतकाल (आत्मा में)प्रगट बना रहता है। **अतः आपको यथार्थ का नाम निश्चय एवं उपचार का नाम व्यवहार ऐसा ही निर्णय करना चाहिए।** जो उपचार/व्यवहार को परमार्थ/निश्चय मानते हैं वे तो मिथ्यादृष्टि ही हैं तथा वे भी जो साधक अवस्था में उपचार/व्यवहार साधन का सर्वथा निषेध करते हैं मिथ्यादृष्टि ही हैं और जो शुभोपयोग करते-करते शुद्धोपयोग हो जाता है ऐसा मानते हैं, वे भी मिथ्यादृष्टिपने को प्राप्त हो जाते हैं। क्यों कि यदि ऐसा ही माना जाये तो शुभोपयोग से पहले होने वाले/रहने वाले अशुभोपयोग को शुभोपयोग का कारण मानना पड़ेगा -जो संभव नहीं है। इसका भी खुलासा भी आ.क.पं.टोडरमलजी ने *मो.मा.प्र.पृ.२५६ पर किया है। - 'द्रव्यलिंगी के शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है, शुद्धोपयोग होता ही नहीं, इसलिए परमार्थ से इनके कारण-कार्यपना नहीं है। इतना है कि शुभोपयोग होने पर शुद्धोपयोग का यत्न करें तो हो जाये, परंतु यदि शुभोपयोग को ही भला जानकर उसका साधन किया करे तो शुद्धोपयोग कैसे हो?*

इसलिए मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण है ही नहीं, सम्यग्दृष्टि को शुभोपयोग होने पर निकट शुद्धोपयोग प्राप्त हो-ऐसी मुख्यता से कहीं शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहते हैं।

आपने जो -जो आगमप्रमाण दिये हैं वे मुझे पूर्णतः मान्य हैं। जो प्रचुरता से प्रशस्तराग सहित वर्तन करने वाले चतुर्थ-पंचम-षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव है,उनके विपरीताभिनिवेश रहित निश्चय सम्यक्त्व को ही सराग सम्यक्त्व संज्ञा है और जो महामुनिराज प्रचुरता से शुद्धोपयोग में वर्तन कर रहे हैं उनके उस निश्चय सम्यक्त्व को ही वीतराग सम्यक्त्व कहा है। सरागता-वीतरागता यह चारित्रगुण का परिणमन है, न कि श्रद्धा-सम्यक्त्व गुण का ! सम्यक्त्व की घातक तो दर्शनमोह + अनंतानुबंधी प्रकृति है, उसका अभाव होने पर (उदय न रहने पर)जो निर्मल प्रतीति पायी जाती है वही निश्चय सम्यक्त्व है, तथा जो सराग

सम्यक्त्व के बाह्य लक्षण प्रवृत्ति रूप तो नारकियों व तिर्यंचों में पाये ही नहीं जाते तो भी उनके निश्चय सम्यक्त्व विद्यमान रहता है। इसलिए अभिप्राय/मान्यता सम्यक् हुए बिना ज्ञान-चारित्र भी सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते हैं।

जिज्ञासा ४ - क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक केजीव को नरक में निश्चय सम्यग्दर्शन है या व्यवहार या दोनों ?

महोदय !आपने तो इसका समाधान ऐसे लिखकर किया है कि नरक में राजा श्रेणिक के जीव को मात्र व्यवहार सम्यग्दर्शन है, निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है-गजब ही कर दिया ? आपने जब यह धारणा ही बना ली हो कि निश्चय सम्यक्त्व तो निश्चय चारित्र का ही अविनाभावी है तब तो आप ऐसा ही लिखेंगे। क्षायिक सम्यग्दृष्टि को व्यवहार/सराग सम्यग्दृष्टि कहना अतिसाहस की बात है। कृपया मैंने सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, अमितगति श्रावकाचारादि के जो उदा.प्रमाण दिये हैं,उनका अवलोकन करें। वहाँ पर स्पष्ट रूप से क्षायिक सम्यक्त्व को वीतराग एवं शेष दो(औपशमिक-क्षायोपशमिक)को सराग सम्यक्त्व कहा है।(क्यों कि ये दोनों छूट जाते हैं,सादि-अनंतकाल नहीं रहते हैं।) तथा जो आपने बृहद् द्रव्यसंग्रह में महाराजा भरत के क्षायिक सम्यग्दर्शन को व्यवहार सम्यग्दर्शन लिखा होने का प्रमाण दिया सो सराग अवस्था में निश्चय सम्यक्त्व तो है परंतु जो परमात्म प्रकाश २-१८ टीका का उद्धरण आप स्वयं जिज्ञासा १ के समाधान में दे आये हैं। उससे भी मिलान कर देखना। उनके गृहस्थावस्था में निश्चय सम्यक्त्व तो है, परंतु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है। तथा वे अशुभ से बचने के लिए शुभ क्रिया करते हैं, इसलिए शुभराग के संबंध से सराग सम्यग्दृष्टि है और इनके सम्यक्त्व को निश्चय सम्यक्त्व संज्ञा भी है क्यों कि वीतराग चारित्र से तन्मयी निश्चय सम्यक्त्व के परंपरया साधकपना है। वास्तव में विचार किया जावें तो गृहस्थावस्था में इनके वह सराग सम्यक्त्व कहा जाने वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है, ऐसा जानो।

यहाँ पर मैं आप से जानना चाहता हूँ कि निश्चय चारित्र का अविनाभावी जो निश्चय वीतराग सम्यक्त्व है-होता है, उस समय दर्शनमोह की कौनसी प्रकृति का अभाव हो जाता है? अरे, वहाँ तो उसी निश्चय क्षायिक सम्यक्त्व की पर्याय है और उसमें अब क्या निर्मलता आनी बाकी है? मात्र चारित्र की सराग/अशुद्धावस्था मिटने से उस क्षायिक सम्यक्त्व को ही वीतराग सम्यक्त्व नाम दिया है। आगम में मात्र अनंतानुबंधी कषाय को ही द्विस्वभावी अर्थात् सम्यक्त्व एवं चारित्र की घातक (दर्शनमोह के साथ) कही है न कि अप्रत्याख्यानावरण या प्रत्याख्यानावरण को ! अतः आप आगम के आलोक में अवश्य ही इस बिंदु पर विचार करें। विज्ञेषु किम्धिकम्।

जिज्ञासा ५ - औपशमिक क्षायोपशमिक,क्षायिक-इन तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों को क्या(आत्मानुभूति रहित)आत्मविश्वास एक सदृश होता है? या तीनों के आत्मविश्वास में कुछ अंतर रहता है?

महोदय ! आपने तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों को सविकल्पावस्था में शुद्धात्मा की अनुभूति रहित आत्मविश्वास होना स्वीकारा, क्षायिक व औपशमिक को निर्दोष और क्षायोपशमिक वाले को सदोष (क्यों कि उसके सम्यक्त्व मोहनीय का उदय है।)मान्य किया है और यह विश्वास आपके अनुसार निर्विकल्प समाधि काल में शुद्ध आत्मानुभूति सहित तथा सविकल्प अवस्था में शुद्ध आत्मानुभूति रहित होता है। परंतु आपने सम्यग्दृष्टि जीव को जो आत्मानुभूति रहित आत्मा का विश्वास होना मात्र बतलाया/लिखा है, उसका आगम प्रमाण नहीं दिया?आत्म विश्वास-आत्मा का विश्वास कौन से आगम-अध्यात्म ग्रंथों में आया है? इस शब्द की खोज आपने की है या कहीं पर लब्धिसारादि में लिखा हो कि अनिवृत्तिकरणोपरांत आत्म विश्वास/आत्मा का विश्वास मिथ्यात्व का उपशम हो जाने पर पूर्ण प्रगट हो जाता है। जैसा कि आपने जिज्ञासा ८ के समाधान में लिखा है तथा जिज्ञासा ६ के समाधान में भी आपने टीका में आये मूल शब्दों को गौणकरअपने मन मुताबिक अर्थ कर डाला है!

आप आत्मानुभूति किस गुण की पर्याय मानते हैं? और सविकल्प निर्विकल्प पर्याय किस गुण की पर्याय मानकर अर्थ कर रहे हैं? अनुभव, अनुभूति, वेदना-संवेदन यह मति-श्रुतज्ञान में ही होता है और साकार उपयोग सविकल्प ही होता है। परंतु मोक्षमार्ग में राग-द्वेष-मोह से उपयोग को बारंबार भ्रमाना(एक ज्ञेय से दूसरे, दूसरे ज्ञेय से तीसरे ज्ञेय पर ले जाना)चंचल करने को ही विकल्प कहा है। इसकी स्पष्टता मो.मा.प्र. पृष्ठ २१०-२११ पर पं. टोडरमलजी ने की है। यदि आप ऐसा ही अर्थ कर रहे हैं तब फिर प्रश्न है कि प्रवचनसार गाथा ८० की ता.वृ.टीका में करणलब्धि प्रविष्ट जीव को 'सविकल्प स्वसंवेदनज्ञानेन' तथा करणलब्धि (अनिवृत्तिकरण)के अनंतर समय में 'अविकल्प स्वरूपरूपे प्राप्ते' इन शब्दों का अर्थ आत्मानुभूतिपरक ही होता है या कोरे आत्मविश्वास रूप? वस्तुतः यह आत्मानुभूतिस्वरूप ही है। इससे चतुर्थ गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि को तथा प्र.सा.माथा २४८ ता.वृ.टीकानुसार श्रावक पंचमगुणस्थानवर्ती को(*'सामायिकादि क्वापि काले'*)निर्विकल्प आत्मानुभूति की सिद्धि हो जाती है।

इतना ही नहीं, प्र.सा.गाथा २०१ में (एवं पणमिय सिद्धे...) तात्पर्यवृत्ति टीका में तो आ.जयसेन देव ने **'जिणवरवसहे'** शब्द की व्याख्या में *'सासादनादि क्षीण कषायान्ता एकदेश जिना उच्यन्ते, शेषाश्चानागार केवलिनो जिनवराभण्यन्ते, तीर्थंकर परम देवाश्च जिनवर वृषभा इति तान् जिनवर वृषभान्। ... ')* **दूसरे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों को एकदेश जिन तक कहा ह** । इस बात को आप किस प्रकार मान्य करते हैं? मात्र आत्मविश्वास होने से? या जात्यंतर ज्ञानानुभव/आत्मानुभव/सुखानुभव होने से?यही बात समयसार गाथा १३ की टीका में कही है। निष्पक्ष होकर विचार करने पर यह बात जँचेगी/भासित होगी,अन्यथा नहीं।

यह जीव अज्ञानी कब तक रहता है? यह पूछे जाने पर आ. जयसेनदेव ने समयसार गाथा-१९ *(कम्मे णोकम्महि...)*ता.वृ.टीका में बहिरात्मा को स्वसंवित्ति शून्य एवं स्वसंबुद्ध या

बोधितबुद्ध ज्ञानी जीवों को भेदज्ञान मूलक शुद्धात्मानुभूति की प्राप्ति होना लिखा है। ... *'अप्रतिबुद्धः स्वसंवित्तिशून्यो बहिरात्माभवति तावत्कालमिति। अत्र भेदविज्ञान मूलां शुद्धात्मानुभूतिं स्वतः स्वयंबुद्धयापेक्षा परतो वा बोधितबुद्धयापेक्षया ये लभंते ते पुरुषाः शुभाशुभ बहिर्द्रव्येषु विद्यमानेष्वपि मुकुरन्दवदविकारा भवंतीति भावार्थः।'*

अर्थात् सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव संसार अवस्था में शुभाशुभ बहिर्द्रव्यों के विद्यमान होते हुए भी दर्पण के समान निर्विकार रहते हैं, ऐसा भावार्थ है।

आप समयसार जी में वीतराग निर्विकल्प समाधिरत ज्ञानी सम्यग्दृष्टि की मुख्यता का कथन मानते हैं और अन्य सम्यग्दृष्टियों का गौण रूप से। अब यदि हम ऐसा ही मानकर चलें तब भी समयसार गाथा ३५ *(जहणाम को वि पुरिसो...)* ता.वृ.टीका में प्रत्याख्यान बाबद् धोबी का दृष्टांत देकर अप्रतिबुद्ध 'स्वसंवेदन ज्ञानबल' से मिथ्यात्वरागादि परभावों की पर्यायों को ये परकीय हैं (अपने स्वभाव में नहीं है) ऐसा जानकर उन सब परभावों को तत्काल छोड़ देता है और शुद्धात्मानुभूति को अनुभवता है, ऐसा स्पष्टरूप से लिखा है। अर्थात् प्रतिबुद्धता स्वानुभूतिपूर्वक ही होती है यह सिद्ध हुआ। और भी देखिए। श्री जयसेनाचार्य देव समयसार गाथा ३८ *(अहमिक्को खलु शुद्धो...)* की उत्थनिका में लिखते हैं-

'अथ शुद्धात्मैवोपादेय इति श्रद्धानं सम्यक्त्वं तस्मिन्नेव शुद्धात्मनि स्वसंवेदनं सम्यग्ज्ञानं, तत्रैव निजात्मनि वीतराग स्वसंवेदनं निश्चल रूपं चारित्रमिति निश्चय रत्नत्रय परिणत जीवस्य कीदृशं स्वरूपं भवतीत्यावेदयन्सन् जीवाधिकारमुपसंहरति।'

इसमें 'स्वसंवेदन' सम्यग्ज्ञान है, कहा ही है और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती से उपर के सभी गुणस्थानानुवर्ती जीव सम्यग्ज्ञानी ही होते हैं। बिना स्वसंवेदन ज्ञान के कोई भी जीव सम्यग्ज्ञानी नहीं हो सकता। यह बात सर्व ग्रंथों में लिखी हुई है। पुनश्च समयसार गाथा ५० से ५५ *(जीवस्स णत्थि वण्णो....)* की टीका में अनेक बार 'शुद्धात्मानुभूते र्भिन्नत्वात्' शब्द लिखा है कि ये वर्णादिक से गुणस्थान तक के भाव जीव के नहीं है। किस कारण से नहीं है? क्यों कि ये सभी पुद्गल द्रव्य के परिणाम होने से 'शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हैं।' अब जो यदि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव के शुद्धात्मानुभूति सर्वथा ही न मानी जाये तो उसने मात्र परोक्ष आगमसापेक्ष ज्ञान से इन वर्णादि भावों को अपने से भिन्न जाना कहलायेगा, निश्चय अनुभूति (स्वाद) पूर्वक जाना नहीं कहलायेगा? परंतु ऐसा मानने से सर्व तत्त्वविप्लव हो जायेगा। ग्यारह अंगों आदि का क्षयोपशम वाले मिथ्यादृष्टि जीवों को भी प्रत्यक्ष ज्ञानी मानने का प्रसंग आयेगा, जो कभी किसी प्रकार सही नहीं कहा जा सकता। सभी सम्यग्दृष्टि स्वानुभव प्रत्यक्ष से ज्ञानी है, न कि बाह्य त्याग तपस्या या बाह्य क्षायोपशमिक ज्ञान की अधिकता से।

पुनश्च, समयसार गाथा-७० *(कोहादिसु वट्टंतस्स...)* ता.वृ.टीका में लिखा है-

'....किंच यावत् क्रोधाद्यास्रवेभ्यो भिन्नं शुद्धात्म स्वरूपं स्वसंवेदनज्ञानबलेन न जानाति तावत्कालमज्ञानी भवति। अज्ञानी सन् अज्ञानजांकर्तृकर्मप्रवृत्तिं न मुञ्चति तस्माद्बंधो

भवति। बंधात्संसारं परिभ्रमतीत्यभिप्रायः।'

पुनश्च, समयसार गाथा-१७७,१७८ ता.वृ. टीका *(रागो दोसो मोहो य आसवाणत्थि सम्मदिट्ठिस्स। तम्हा आसवभावेण विणाहेदूण पच्चयाहोंति।। हेदु जदुव्वियप्पो....)*

टीका- *रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्नभवंति सम्यग्दृष्टत्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः तथाहिअनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभ मिथ्यात्वोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न- संतीति पक्षः। कस्मात्? इतिचेत् केवलज्ञानादि अनंतगुणसहित परमात्मोपादेयत्वे सति वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत षट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्व नव पदार्थ रुचिरूपस्य मूढत्रयादि पंचविंशति दोष रहितस्य.....तथा चोक्तं-*

आद्या सम्यक्त्वाचारित्रे द्वितीया ध्वनत्यणुव्रतं ।
तृतीयासंयमतुर्य्यायथाख्यातं क्रुधादयः ।।

अर्थ- चतुर्थगुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव को राग-द्वेष-मोह नहीं होते हैं। क्यों कि इन भावों के होने पर सम्यग्दृष्टिपन बन ही नहीं सकता है। इसे स्पष्ट कर बतला रहे हैं कि चतुर्थगुणस्थानवर्ती सराग सम्यग्दृष्टि जीव के अनंतानुबंधी क्रोध,मान,माया,लोभ एवं मिथ्यात्व के उदय में होने वाले राग-द्वेष-मोह के भाव नहीं होते।...(इसीप्रकार पंचमगुणस्थान-वर्ती श्रावक के अनंतानुबंधी एवं अप्रत्याख्यानावरण दो कषाय तथा छठवें गुणस्थान वर्ती मुनि के अनंतानुबंधी,अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण ये तीन कषायरूप क्रोध-मान-माया-लोभ रूप राग-द्वेष-मोह नहीं होते हैं तथा सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनिराज वीतराग(वीतरागसम्यग्दृष्टि) के इन्हीं कषायों के तीव्र उदय जनित प्रमादोत्पादक राग-द्वेष-मोह नहीं होते।

और इसी प्रकार अन्य ग्रंथ में भी कहा है कि प्रथम मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी वाले क्रोध-मान-माया-लोभ सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों को नहीं होनेदेते हैं।दूसरे अप्रत्याख्यानावरण कषाय सम्यक्त्व और स्वानुभूति/स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान को नहीं रोकते हैं, लेकिन अणुव्रत नहीं होने देते हैं। तीसरे प्रत्याख्यानावरण कषाय सम्यक्त्व और देशव्रत को नहीं रोकते हैं, लेकिन सकल संयम नहीं होने देते हैं।

उपरोक्त कथन का तात्पर्य यही है कि चतुर्थ गुणस्थान में अनंतानुबंधी के अभाव में तज्जन्य क्रोधादि नहीं होते हैं और जो विशुद्धि प्रगटती है, उसे सम्यक्त्वाचरण चारित्र नाम दिया है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के प्रगट दिखायी दे ऐसा देशव्रत/सकलव्रत का परिणम रूप चारित्र नहीं होता और न कोई आगमी अध्यात्मी मानता है कि ऐसा चारित्र होता है।

जिज्ञासा ६ - प्र. सा. गाथा ८० एवं समयसार गाथा ३२० की तात्पर्यवृत्ति टीकाओं में क्रमशः करणलब्धिपूर्वक 'अविकल्पस्वरूप की प्राप्ति' तथा 'भव्यत्व शक्ति की व्यक्तता' का स्वरूप बतलाया है। क्या इसका अर्थ मात्र आत्मविश्वास होना ही सम्यग्दर्शन माना गया है?

इसका समाधान आपका सही इसलिए नहीं है कि आपको निश्चय-सम्यक्त्व के रूप -स्वरूप में पूरा विपर्यास है। इसकी सप्रमाण विस्तृत चर्चा मैं जिज्ञासा ३,४ एवं ५ में ऊपर कर आया हूँ। वहाँ यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्रतिबुद्धता (आत्मज्ञान/सम्यग्दर्शन) स्वात्मानुभूतिपूर्वक ही होती है।

जिज्ञासा ७ - (अ) प्रवचनसार गाथा ८० ता.वृ. टीका के प्रारंभ में उल्लिखित 'अथ चत्तापावारंभ (गाथा ७९) इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादि विनाशाभावे शुद्धात्म लाभो न भवति।'...का क्या अर्थ है?

महोदय ! आपने इसका अर्थ भी गलत कर दिया। आपने ७९ गाथा का अर्थ कर दिया जब कि ८० वीं गाथा की ता.वृ. टीका का अर्थ करना था । आपने मोह शब्द का अर्थ चारित्रमोह कर दिया जब कि अनेक जगह तथा इसी गाथा की टीका में मोह शब्द का अर्थ दर्शनमोह किया है, लिखा है स्वयं आचार्यदेव ने ! जिनागम में सर्वत्र मोह का अर्थ दर्शन मोह तथा रागद्वेष (क्षोभ) का अर्थ चारित्रमोह किया है। प्रमाण के लिए आप प्रवचनसार की गाथा-८०,८१,८३,८५,८६,८८,८९,९२, १८०, १८८, १९४,१९५,१९६ ता.वृ.टीका देखें । समयसार गाथा २८१ भी देखें। यह तो आप भी मान्य कर रहे हैं,करना भी चाहिए कि शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए मोहादि केविनाश के लिए शुद्धोपयोग आवश्यक है। फिर भी मोह शब्द का आप यहाँ ८० वीं गाथा में चारित्रमोह करें यही आश्चर्य है। इसके अलावा आपने प्रवचनसार गाथा २४८ *(दंसणणाणुवदेसो.....)* की ता.वृ.टीका का अर्थ लिखना क्यों छोड़ दिया? क्यों कि उसमें स्पष्ट रूप से श्रावकों के सामायिकादिध्यान काल में शुद्धोपयोग होता है यह सिद्ध किया है। कृपया पुनर्विचार करें।

जिज्ञासा ८ - प्रायोग्यलब्धि में, करणलब्धि में तथा अनिवृत्तिकरणोपरांत होने वाले आत्मा के विश्वास में क्या अंतर है?

महोदय ! आपने प्रायोग्यलब्धिस्थ जीव को आत्मा का विश्वास नहीं होना, करणलब्धि में आत्मविश्वास का होना प्रारम्भ होना(पूर्ण आत्मविश्वास नहीं हो पाना, क्यों कि प्रतिबंधक दर्शनमोह/मिथ्यात्व का सद्भाव है) तथा अनिवृत्तिकरण के उपरांत मिथ्यात्व का उपशम हो जाने से आत्मविश्वास पूर्ण प्रकट हो जाता है-मान्य किया है। आप ही के अनुसार इसी आत्मविश्वास ही का नाम सम्यग्दर्शन है। क्यों कि जब तक मिथ्यात्व का उदय है तब तक तत्त्व श्रद्धानमूलक आत्मविश्वास बिल्कुल संभव नहीं है।

सम्यग्दर्शन-(शुद्धात्मा की रुचि, प्रतीति स्वसंवेदन, आत्मख्याति) को आत्मा का विश्वास शब्द दिया जाना विचारणीय है क्यों कि समयसार गाथा - १३ की टीका में इस शब्द का प्रयोग दोनों ही आचार्यों ने नहीं किया है, मात्र आपके सिवाय? आप ऐसा क्यों कर रहे हैं, आपका मंतव्य/अभिप्राय समझ पाना कठिन है।

सम्यक्त्वोपलब्धि से पूर्व जिनोपदिष्ट तत्त्वों का श्रवण, ग्रहण, धारण, निर्धारण होता है। धारणा ज्ञान तक यह जीव अनेकों बार आ जाता है, परंतु निर्धारण नहीं करता कि यह उपदेश मेरे भव रोग जन्म मरण मिटाने की औषधि है तथा जो प्रायोग्यलब्धिस्थ जीव को 'यह ऐसे ही है' ऐसी सविकल्प ज्ञान में निर्णयात्मक रुचि हो जाये तो ही वह शुद्धात्माभिमुख परिणाम रूप करणलब्धि में प्रवेश कर सकता है ,अन्यथा नहीं। अर्थात् जो यदि उसे आत्मा का विश्वास ही न आये तो क्या वह प्रायोग्यलब्धि तक आया कहलायेगा?फिर वह अपने मति श्रुत ज्ञानोपयोग को स्वरूप सन्मुख क्यों कर करेगा?(देखो-स.सा.-१४४-आत्मख्याति टीका)

यह बात तो आपने स्वीकार ही ली है कि **'सम्यक्त्व समान तो आत्मा का विश्वास भी समान।'** क्यों कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अनुदय आत्मविश्वास में कोई विशेषता लाने में समर्थ नहीं है। तब फिर बन्धुवर ! प्रत्याख्यानावरण का अनुदय उस आत्मा को विश्वास में क्यों कैसे कोई विशेषता डाल सकता है? क्यों कि आत्मविश्वास का संबंध तो मात्र दर्शन मोहनीय + अनंतानुबंधी चतुष्क से है, न कि अप्रत्याख्यानवरणादि कषायों से ! अतः यह बात ही कि 'निश्चय सम्यक्त्व तो चतुर्थ गुणस्थान में ही हो जाता है।'- स्वीकारने में आगम का अपलाप नहीं है वरन् ऐसा नहीं स्वीकारने में आगम का अपलाप है। इस सच्ची आत्मप्रतीति रूप निश्चय सम्यक्त्व को ही चारित्रिक अस्थिरता के कारण सरागता के सद्भाव के कारण सराग सम्यक्त्व एवं संयमी मुनिराज को चारित्रिक स्थिरता के कारण वीतराग सम्यक्त्व संज्ञा मिलती है। क्षायिक सम्यक्त्व तो चतुर्थ गुणस्थान से लेकर गुणस्थानातीत सिद्धावस्था में (सादि-अनंतकाल पर्यंत) यथावस्थित रूप से अपरिवर्तनीय ही रहता है। आगम-अध्यात्म का सुमेल बैठाने से ही यह बात बैठेगी, अन्यथा नहीं।

जिज्ञासा १० - आपके हिसाब से मुनिराजों को ही आत्मानुभूति होती है तो गृहविरत श्रावकों (क्षुल्लक,ऐलक,आर्यिका) को भी स्वात्मानुभूति नहीं होती होगी?

बन्धुवर ! समाधान ऊपर किया जा चुका है। स्वात्मानुभूति = आनंदानुभूति का ही नाम है। ऐसी त्याग तपस्या से क्या फायदा जिसमें आनंदानुभूति विकल्पों के भार-बोझ से मुक्ति, निर्भारता, शांत रस का स्वाद, तृप्ति ही न प्रकट हो। जिसकी जितनी कषायें मिटती जाती हैं, वह वह उतना ही निर्भार, हलकापन महसूस करने लग जाता है। यदि चतुर्थ-पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों को निराकुलत्व लक्षण अतींद्रिय सुख की कणि का ही प्रकट न होती हो, तो फिर द्रव्यलिंगी मुनि को प्रवचनसार गाथा २७१ में संसार तत्त्व क्यों कहा? क्यों कि न तो उसे आत्मा की श्रद्धा,(सम्यक्त्व)है और न स्वानुभूति (आनंदानुभूति)। अविरतसम्यग्दृष्टि व देशव्रती को द्रव्यलिंगी मुनि से श्रेष्ठ क्यों कहा ? भैया ! विचार करो, मात्र शब्द के जाल

में मत उलझो। ध्यानाभ्यासद्वारा धर्म्यध्यान/सम्यग्दर्शन प्रगट करो। विज्ञेषु किमधिकम् । यह बात तो सत्य ही है कि गृहस्थों के यति/मुनि के समान शुद्धात्मा की भावना, लीनता करना नहीं बनता, परंतु इसका अर्थ ऐसा भी नहीं है कि वह शुद्धात्मा की भावना भूमिकानुसार बिल्कुल ही नहीं कर सकता। इसीलिए कहा है -

जं सक्कई तं कीरई , जं ण सक्कई तं च सद्दहई ।
सद्दहमाणो जीवो पावई अजरामरं ठाणं॥

परमार्थतः जिसकी जितनी कषायें उतना ही दुःख आकुलता यह जीव भोगता है। जिसकी जितनी कषायें मिट जाती है, घट जाती है, वह उतना ही सुख ,निराकुलता का वेदन करता है। निर्ग्रंथता तो परिग्रह पाप का प्रायश्चित्त है और कुछ भी नहीं। स्वात्मानुभूति तो अंतरंग साधना का फल है। धर्म्यध्यान चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थानों में सविकल्पक मात्र ही नहीं होता है। प्रवचनसार गाथा १९६ (जो खविद कलुसो...) ता.वृ. टीका में ध्यान, ध्यान-संतान, ध्यान-चिंता, ध्यानान्वयसूचनम् ऐसे ४ भेद दर्शाये हैं। उन पर विचार करना। क्यों कि सविकल्प से ही निर्विकल्प होने का विधान है। जो आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी ने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में सरल भाषा में दिया है।

जिज्ञासा ११- जैनों एवं जैनेतर मतावलम्बियों के आत्मा के विश्वास में क्या कुछ अंतर होता है? क्यों कि अन्य मतावलंबी भी आत्मा के होने में विश्वास रखते हैं।

महोदय ! इसका समाधान आपने ठीक ही किया है कि जैनेतर कुछ मत आत्मा का अस्तित्व तो मानते हैं, परंतु आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिचय न होने के कारण उसको कर्मबद्ध अशुद्ध अवस्था तथा उसके शुद्ध होने के उपायों का सही ज्ञान न होने के कारण अज्ञानी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, उनके आत्मविश्वास रज्चमात्र भी नहीं है। उनका आत्मविश्वास गृहित मिथ्यात्व सहित है, जब कि जैनियों का उससे रहित है। फिर प्रश्न होता है कि वर्तमान के कितने जैन गृहस्थ, पंडित, साधु गृहित मिथ्यात्व से रहित हैं? बल्कि उलटे गृहित मिथ्यात्व का ही पोषण कर रहे हैं और अभी फरवरी २००६ में श्रवणबेलगोला में जो महामस्तकाभिषेक होगा, क्या वह जैन संस्कृति का प्रतीक है? विचारणीय है। हो सकता है, उसे देखने हम, आप भी जायें। एक बार आपकी जिनभाषित पत्रिका दोनों तेरा-बीस पंथी आम्नायों को सही ठहरा चुकी है, और उसका निषेध वयोवृद्ध विद्वान पं. श्री नाथुलाल जी शास्त्री-इंदौर ने किया था। वर्तमान में यदि अनेकों जैन पंडित, साधु शिथिलाचारी हैं, तो अनेकों उत्सूत्रभाषी भी हैं । पंचम काल की बलिहारी ही समझना चाहिए?

जिज्ञासा १२ - वह आत्मा जिसका कि जैनों(सम्यग्दृष्टियों) को विश्वास होता है कि वह द्रव्यकर्म, नोकर्म (शरीर),भावकर्म, (मोह-राग-द्वेष) से रहित आत्मा होता है या इनके सहित होता है?

महोदय ! आपने इतना तो ठीक ही लिखा कि सम्यग्दृष्टि तो द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा का ही श्रद्धान करता है। (परंतु जो यह लिखा कि पर उस आत्मा की अनुभूति वीतराग परिणति में ही होती ही है , जो कि वीतराग चारित्र के होने पर ही संभव है। अर्थात् मुनि को ही होती है, एक लंगोटी धारी ऐलक को भी नहीं ? मैं फिर जानना/पूछना चाहता हूँ, कि उस एक लंगोटी धारी तपस्वी सच्चे सम्यग्दृष्टि पंचम गुणस्थानवर्ती को रञ्चमात्र भी आत्मानुभूति(आनंदानुभूति)नहीं है/नहीं होती है, तो लंगोटी छोड़ते ही, मुनिदीक्षा लेते ही, वह आत्मानुभूति-अतींद्रिय आनंदानुभूति प्रगट हो जाती होगी? जरा विचार करो कि किस अपेक्षा से वीतराग चारित्रधारी मुनि को वह आत्मानुभूति किस स्तर की होती है जो आगम में लिखी गयी है । अहो ! मुनिराज के अतींद्रिय आनंद की तो क्या बात करना? वे तो तीन कषाय चौकड़ी के अभाव से निरंतर प्रचुर स्वसंवेदन रूप निराकुलता का प्रत्यक्ष वेदन करते हैं।

जिज्ञासा १३ - अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है या नहीं? यदि है तो उसके चारित्र कौनसा प्रगट हुआ कहलायेगा? मिथ्या चारित्र भी उसके नहीं है।

आदरणीय बैनाड़ा जी ! इस जिज्ञासा के समाधान में आपने जो भी आगम प्रमाण दिये हैं, वे सर्व ही मुझे पूर्णरीत्या मान्य हैं। मेरा तो मात्र इतना ही कहना है कि सम्यग्दर्शन ज्ञान के साथ जो सम्यक्त्वाचरण है वह अविरत सम्यग्दृष्टि को मोक्षमार्गी सिद्ध करता है। उसे जघन्य अंतरात्मा कहा है।

मिथ्या श्रद्धान, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र - इन तीनों की एकता संसारमार्ग है , बंधमार्ग है और सम्यक्श्रद्धान, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग है। अविरत-सम्यग्दृष्टि के मिथ्याश्रद्धान-ज्ञान-चारित्र तीनों ही नहीं है , तो प्रतिपक्षी सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र उसके प्रगट हुए होना चाहिए , क्यों कि उस तत्त्वज्ञानी के दुःख फल को पैदा करने वाले मिथ्याश्रद्धान-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र नहीं है। फिर भी उसे जो असंयमी कहा है उसका कारण अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों का उदय है। इसी बात की विशद चर्चा श्लोकवार्तिक प्रथम भाग पृष्ठ ५५३ से पृष्ठ ५५६ तक में हैं। तदनुसार -

' मिथ्या दर्शनाद्यपक्षये क्षीयमाणश्च न स्यात्, इति संदिग्ध विपक्षव्यावृत्तिकत्वमपि न साधनस्य शंकनीयं सम्यग्दर्शनोत्पत्तावसंयत सम्यग्दृष्टे मिथ्यादर्शनस्यापक्षये मिथ्याज्ञानानुत्पत्तेस्तत्पूर्वक मिथ्याचारित्रभावात्तन्निबंधन संसारस्यापक्षयेप्रसिद्धेः, अन्यथा मिथ्यादर्शनादि त्रयापक्षयेपि तदपक्षयाघटनात्।'

(सारांश-क्यों कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाने पर चतुर्थगुणस्थान वाले असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के मिथ्यादर्शन का ह्रास हो जाने पर मिथ्याज्ञान की उत्पत्ति नहीं **हो** पाती है । अतः उन मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान को पूर्ववर्ती कारण मानकर होने वाले मिथ्याचारित्र का भी अभाव हो गया है। इस कारण उन तीन कारणों से उत्पन्न हुए संसार का भी ह्रास होना प्रसिद्ध

है। जब कारण ही न रहा, तो कार्य कहाँ से होगा?)

'न च सम्यग्दृष्टेर्मिथ्याचारित्राभावात्संयतत्वमेव स्यान्न पुनः कदाचित् असंयतत्वान्मित्यारेका युक्ता, चारित्रमोहोदये सति सम्यक् चारित्रस्यानुपपत्तेरसंयतत्वोपपतेः। कात्स्न्यतो देशतो - न संयमो नापि मिथ्यासंयम इति व्याहतमपि न भवति, मिथ्यागमपूर्वकस्य संयमस्य पन्चाग्निसाधनादे र्मिथ्यासंयमत्वात् सम्यगागम पूर्वकस्य सम्यक् संयमत्वात्। ततोऽन्यस्य मिथ्यात्वोदया सत्त्वेपि प्रवर्त्तमानस्य हिंसादेरसंयमत्वात् ।'

(**सारांश**-कोई शंका करे तो फिर सम्यग्दृष्टि जीव के चतुर्थ गुणस्थान में मिथ्याचारित्र के न रहने से संयमीपना हो भी जावे? फिर कभी भी उसे असंयतपना नहीं होना चाहिए? परंतु ऐसी शंका करना ठीक नहीं है, क्यों कि चौथे-पाँचवें गुणस्थान में चारित्र गुण का घातक-अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण कषायों का उदय हो रहा है। ऐसा होने पर सम्यक् चारित्र गुण नहीं बन सकता। वस्तुतः चतुर्थ गुणस्थान में न तो संयम(मुनिपना)है, न देशसंयमव्रती(श्रावकपना) है और न हि मिथ्यासंयम (प्रथम गुणस्थानवत् मिथ्याचारित्र) है। इसप्रकार उसके असंयमपना है जो कि पूर्ण संयम, देश संयम और मिथ्यासंयम से भिन्न है।

'न चासंयमादभेदेन मिथ्यासंयमस्योपदेशाभावभेद एवंति युक्तं तस्य बालतपः शब्देनोपदिष्टत्वात् तत कथंचित् भेदसिद्धे।'

अर्थ-किसी का आक्षेप है कि जीव के पाँच भावों में औदयिक असंयतभाव से भिन्न मिथ्यासंयम का कहीं उपदेश नहीं है। इसकारण मिथ्याचारित्र और असंयम का अभेद ही मानना चाहिए। फिर चौथे में या तो मिथ्या चारित्र मानो या संयमीपन स्वीकार करो। ग्रंथकार कहते हैं-ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्यों कि ये असंयम से भिन्न माने गये उस मिथ्या चारित्र का तत्त्वार्थसूत्र छठवें अध्याय में 'बालतप' शब्द से उपदेश किया है। उस कारण मिथ्या चारित्र और असंयम में किसी अपेक्षा से भेद ही सिद्ध है। *'न हि चारित्रमोहोदयमात्राद् भवचारित्रं। दर्शनचारित्र मोहोदयजनिताद्चारित्रादभिन्नमेवेति साधयितुं शक्यं, सर्वत्र कारण भेदस्य फलाभेदक्त्वप्रसक्तेः मिथ्यादृष्टच्यसंयमस्य नियमेन मिथ्याज्ञान पूर्वकत्वप्रसिद्धेः, सम्यग्दृष्टच्यसंयमस्य मिथ्यादर्शनज्ञानपूर्वकत्व विरोधात् विरूद्ध-कारणपूर्वकतयापि भेदाभावे सिद्धान्त विरोधात्।'*

अर्थ-चतुर्थ गुणस्थान में दर्शनमोहनीय के संबंध से रहित होकर केवल चारित्रमोहनीय के उदय से होने वाला जो चारित्र है वह पहले गुणस्थान में दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उदय से होने वाले मिथ्याचारित्र से अभिन्न ही है(सदृश है)-इस बात को सिद्ध करना शक्य नहीं है। शक्य न हो तो भी मान लिया तो सर्वत्र कारणभेद होने पर भी कार्यफल में अभेद मानने का प्रसंग आ जायेगा।(इससे क्या अनर्थ हो जायेगा) जिस चतुर्थ गुणस्थान के अचारित्र भाव में केवल चारित्रमोहनीय का उदय है और पहले गुणस्थान के अचारित्र (मिथ्याचारित्र)में दर्शनमोहनीय सहित चारित्रमोहनीय का उदय है।-ये दोनों एक कैसे हो सकते हैं? मिथ्यादृष्टि का असंयम नियम से मिथ्याज्ञानपूर्वक प्रसिद्ध हो रहा है और सम्यग्दृष्टि के असंयम को

मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान को कारण मानकर उत्पन्न होने का विरोध है।-ये दोनों दोष चतुर्थगुणस्थान में नहीं हैं। विरूद्ध कारणों के पूर्ववर्ती होने पर भी उत्तम समय में उत्पन्न हुए कार्यों का यदि भेद होना न माना जायेगा तो सभी वादियों को अपने सिद्धांतों से विरोध हो जायेगा। क्यों कि सभी परीक्षकों ने भिन्न-भिन्न कारणों के द्वारा भिन्न-भिन्न कार्यों की उत्पत्ति होना मान्य किया है।अतः प्रथम व चतुर्थ गुणस्थान के असंयम न्यारे-न्यारे ही हैं।

भावार्थ-सम्यक् चारित्र न होने की अपेक्षा से दोनों असंयम एक हैं किन्तु नञ् का अर्थ पर्युदास और प्रसज्य करने पर दर्शन मोहनीय के उदय से सहित अचारित्र को मिथ्या चारित्र कहते हैं और दर्शन मोहनीय के उदय न रहने पर(+अनंतानुबंधी के भी न रहने पर)केवल अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण के उदय से होने वाले असंयम को अचारित्र कह देते हैं। परमार्थतः अनंतानुबंधी चारित्रमोह की प्रकृति है। वह चारित्र का ही घात करती है। सम्यक्त्व का घात नहीं करती परंतु उसका उदय सम्यक्त्व के नाश का कारण अवश्य है। उसे ही सम्यक्त्व का विरोधक सासादन कहा। सम्यक्त्व का अभाव मिथ्यात्व का उदय होने पर ही होता है, वह सासादन में नहीं हुआ। वहाँ २ रे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व का ही काल है, इसीलिए उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहा है, सासादन मिथ्यादृष्टि नहीं कहा।

आ.क.पं.टोडरमलजी ने मो.मा.प्र.में पृ.९२ पर इसीलिए सत्य ही लिखा है कि- *'मिथ्याचारित्र में स्वरूपाचरण चारित्र का अभाव है इसीलिए इसका नाम अचारित्र भी कहा जाता है।'* परंतु अविरत सम्यग्दृष्टि के मिथ्याचारित्र होता ही नहीं तो उसके अचारित्र को सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा तथा उसे ही आत्मज्ञानी विद्वानों ने स्वरूपाचरण चारित्र कहा है। अतः यह जीव मोक्षमार्गी है। जघन्य अंतरात्मा है।(-देखो-कार्तिकेयानुप्रेक्षा- गाथा १९७ तथा वारसाणुवेक्खा गा.१८)

जिज्ञासा१४-सम्यक्त्वाचरण (मोक्षपाहुड गाथा ५ से १०) एवं स्वरूपाचरणचारित्र में क्या अंतर है?

समाधान यह है कि शंकादि २५ मल दोषों से रहित अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन को धारण करना सम्यक्त्वाचरण चारित्र है(व्यवहार है)और दर्शनमोह के साथ जो अनंतानुबंधी कषायों का अभाव हुआ तत्फल स्वरूप आत्मा (चारित्र) में जो विशुद्धि प्रगट हुई, शान्ति-समता का वेदन-परिणमन हुआ वही स्वरूपाचरण चारित्र है। बाह्य व्रतादि न होने से इसे ही असंयम कहा। मिथ्यात्व के अभाव में आस्तिक्य एवं अनंतानुबंधी के अभाव में प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आत्मनिंदा-गर्हादि गुण प्रगट होते हैं।- ऐसा कहना भी गलत नहीं होगा।

जिज्ञासा १५-मोक्षमार्ग में प्रगट होने वाला संवर-निर्जरा तत्त्व क्या शुभ भाव रूप भी है या वीतरागभाव(शुद्ध भाव)रूप ही है?

मोक्षमार्ग अर्थात् साधक अवस्था (चतुर्थ से बारहवें गुणस्थान तक) अथवा बुद्धिपूर्वक

सरागता हेय वीतरागता उपादेय कर वर्तन (आचरण) करने की अवस्था । तदनुसार चतुर्थ, पंचम, षष्ठम, गुणस्थानवर्ती ज्ञानी का जीवन। सभी ज्ञानी जीव यह मानते हैं कि कारण भिन्नता से कार्य भिन्नता होती ही है । जो-जो बंध के कारण है उनसे विपरीत अबंध (संवर-निर्जरा)के कारण होते हैं। बंध के ५ प्रत्यय हैं। मिथ्यादर्शन,अविरति,प्रमाद, कषाय, योग। ये क्रम से ही आते हैं। मिथ्यात्व के जाने पर ही जीव को मोक्षमार्गी हुआ कहा है। उस सम्यग्दृष्टि के श्रद्धान में सर्व प्रकार का राग हेय ही होता है। पूर्ण वीतरागता ही उपादेय रहती है। तथापि जैसे मिथ्यात्व एक क्षण में चला जाता है और सम्यक्त्व ,सच्ची श्रद्धा प्रगट हो जाती है, अर्थात् प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान में आ जाता है परंतु चारित्रमोह क्रम-क्रम से ही जाता है। इस कारण सम्यग्दृष्टि जीव अशुभ को प्रथम छोड़ता है, शुभ को ग्रहण करता है, लक्ष्य शुद्ध का ही रहता है। इसलिए सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के सराग चारित्र को जो कि शुभोपयोग रूप शुभभावरूप है ,पुण्यबंध का कारण है, पाप का संवर करने वाला है, उसे उपचार से संवर-निर्जरा रूप कहा है ,जानना । निश्चय से वीतरागभाव(शुद्धभाव)ही संवर-निर्जरा रूप है। देखो-बृ.द्रव्य संग्रह-गाथा ४५ की टीका-एवं प्रवचनसार गाथा-१८१,७९, १९९ की टीका)स्वशुद्धात्मा का अनुभव रूप शुद्धोपयोग रूप वीतराग चारित्र(स्वरूप स्थिरता)ही संवर-निर्जरा है और सराग चारित्र(अशुभ पाप से बचने के लिए,संसार स्थिति छेदने के लिए)शुभ भाव रूप परिणाम उपचार से संवर-निर्जरा रूप हैं। सराग चारित्र को अपहृत संयम कहा है। जो बाह्य में पंचेंद्रिय विषयों का त्याग है। वह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से चारित्र है और अंतरंग में जो रागादि का त्याग है, वह अशुद्ध निश्चयनय से चारित्र है। व्यवहार(सराग)चारित्र से साध्य निश्चय चारित्र(वीतरागता/संवर-निर्जरा) का वर्णन बृ.द्रव्य संग्रह गाथा ४६ में है और इन दोनों प्रकार के मोक्षमार्गों को प्राप्त करने का उपाय ध्यान्याभ्यास है। तदर्थ बृ.द्रव्यसंग्रह की गाथाएँ ४७,४८,४९;५० देखें।

आपने जो भी प्रमाण आगम से लिखे वे सब मान्य हीं है। परंतु उपचार-अनुपचार, व्यवहार-निश्चय रूप संवर-निर्जरा का स्वरूप समझना जरूरी है। अन्यथा उपचार(सराग चारित्र)को ही परमार्थ(निश्चय वीतराग चारित्र)समझने से श्रद्धामूलक अभिप्राय की भूल बनी रहती है।(पुरूषार्थ सिद्ध्युपाय की गाथाएँ-२११,२१२-२१४ भी इस अर्थ में देखें।)

जिज्ञासा १६ -मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि जो नवमें ग्रैवेयक तक जाते हैं तथा जिन्हें ११अंगों तक का ज्ञान प्रगट हो जाता है, क्या उनको आत्मा का विश्वास नहीं होता? क्या उनके संवर-निर्जरा तत्त्व प्रगट होते हैं या नहीं?

आपने जो समाधान लिखा वह योग्य ही है कि उसे विपरीताभिनिवेशरूप मिथ्यात्व का उदय रहता है। मिथ्यात्व रहते हुए व्यवहार सम्यक्त्वरूप आत्मविश्वास संभव नहीं।

- यह जरा विचारणीय बिंदु है। कृपया मो.मा.प्र.पृष्ठ २४५, २४६, २४७, ३११ अवश्य

अवलोकन करें।

जिज्ञासा १७ - धर्म्यध्यान के स्वामी चौथे से सातवें गुणस्थानवर्ती जीव कहे हैं। तब असंयमी सम्यग्दृष्टि के भी चारित्र का अंश प्रगट हुआ होना चाहिए, अन्यथा (१६+२५=४१)प्रकृतियों का बंध नहीं रूकता? अनंतानुबंधी चारित्र-मोह की प्रकृति का अनुदय/अप्रशस्त उपशम/क्षय ही कारण है। इस चारित्र के अंश का नाम आगम में कहीं कुछ आया हो तो स्पष्ट करें।

आपका यह समाधान कि अनंतानुबंधी का कार्य अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के उदय के प्रवाह को अनंत कर देना है, इसलिए चारित्र में अनंतानुबंधी चतुष्क का व्यापार निष्फल नहीं है, परंतु वह किसी चारित्र का घात नहीं करती। अतः उसके जाने पर कोई चारित्र प्रकट नहीं होता। - यह बिंदु विचारणीय है। इस विषय की हम-आप ऊपर चर्चा कर ही आये हैं कि अनंतानुबंधी के जाने पर सम्यक्त्वाचरण चारित्र प्रगट होता है और यह भी आगम है कि अनंतानुबंधी कषायों से बंधने वाली २५ प्रकृतियाँ हैं। जो उसके जाने पर नहीं बंधती तथा उसका उदय आते ही सासादन गुणस्थान में बंधन लगती है। सासादन में जो १६ प्रकृतियों का बंध रूका रहता है, नहीं होता है। उसका कारण वहाँ मिथ्यात्व का अभाव ही है। क्यों कि मिथ्यात्व से बंधने वाली १६ प्रकृतियाँ अलग है। अनंतानुबंधी के जाने से जो चारित्रिक विशुद्धता प्रगटती है (भले उसका कुछ भी नाम शास्त्रों में न दिया हो, अचारित्र ही कहा हो।) उससे २५ प्रकृतियों का आस्रव बंध नहीं होता।

जिज्ञासा १८- समयसार गाथा-१३ (भूदत्थेणाभिगदा...)की आत्मख्याति-टीका में अंत में 'एवमसावेकत्वेन द्योतमान शुद्धनयेत्वनानुभूयतएव। या त्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेव। इति समस्तमेव निरवद्यम्।' इसका अर्थ स्पष्ट करें।

महोदय ! आपने इस पंक्तियों का अर्थ अनुवाद सही नहीं किया। आपने अपनी धारणानुसार ही कर दिया कि....आत्मा की इस शुद्धनय से जानी गयी अवस्था का विश्वास (?) ही सम्यग्दर्शन है। आगे आप यह भी लिख रहे हैं कि यह प्रसंग समयसार का है और वह वीतराग सम्यग्दृष्टि की ही प्रधानता का है।.....अन्य का गौण रूप से ग्रहण किया है। आचार्य परमेष्ठी शास्त्रों की रचना अपने शुद्धोपयोग से च्युत हो शुभ विकल्प में आने पर अपने को अशुभ से बचाते हुए अज्ञानी जीवों को सच्चे मोक्षमार्ग का निरूपण कर सन्मार्ग पर लाने हेतु ही करते हैं। और आ. जयसेन जी ने जो वीतराग सम्यग्दृष्टि की मुख्यता की सो उचित ही है, परंतु लक्षण दृष्टि से ही पूर्वापर विरोध रहित तत्त्वों की प्ररूपणा करते हैं। लक्ष्य सम्यग्दर्शन का है तो उसका लक्ष्यण जो त्रिकाल अबाधित है वही श्रीमद् अमृत-

चंद्राचार्यदेव ने इस गाथा टीका में लिखा है। वह इस प्रकार है-.....(इसलिए इन ९ तत्त्वों में भूतार्थ नय से एक जीव ही प्रकाशमान है।) इस प्रकार यह एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ शुद्धनय रूप से अनुभव किया जाता है और जो यह अनुभूति है सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) है और जो आत्मख्याति है सो सम्यग्दर्शन ही है। इसप्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है, बाधारहित है।

जिज्ञासा १९ - तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार प्रथम खंड पृष्ठ ५५५ पर 'नहि चारित्रमोहोदयमात्रादभवच्चारित्र दर्शन चारित्र मोहोदयजनितादः- चारित्राद भिन्नमेवेति साधयितुंशक्यं सर्वत्र कारण भेदस्य फलाभेदकत्व प्रसक्तेः। ..... सिद्धांतविरोधात्।.... इसके हिंदी अर्थ में पं.श्री माणकचंदजी कौंदेय न्यायाचार्यजी ने चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को स्वरूपाचरण चारित्र(अचारित्र में)कहा है तथा जैन सिद्धांत प्रवेशिका में पं. गोपालदासजी बरैया ने प्रश्न १११/११२ में स्वरूपाचरण चारित्र कहा है। क्या आपको यह मान्य है?

आपने किसी आर्षग्रंथ में स्वरूपाचरण शब्द का प्रयोग नहीं पाया अतः अमान्य किया, परंतु पं.गोपालदास जी बरैया ने जो स्वरूपाचरण चारित्र का कथन किया है उसे उसे मात्र सम्यक्त्वाचरण चारित्र का पर्यायवाची कहा जा सकता है,मान्य किया ,परंतु सम्यक् चारित्र में गर्भित नहीं किया। जा सकता। इस बाबद पूर्व में काफी कुछ लिखा जा चुका है। इसमें मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है। साथ में आपने यह जो लिखा है कि यह भी लिखना उचित होगा कि आ, कुंदकुंद ने अनंतानुबंधी के अभाव से सम्यक्त्वाचरण चारित्र नहीं माना है। अन्यथा तृतीय गुणस्थान में भी सम्यक्त्वाचरण मानना पड़ेगा, जो गलत होगा। तो कृपया विदित करायें कि सम्यक्त्वाचरण किसके अभाव में प्रगट होता है?

-तथा निम्नलिखित आठ अन्य जिज्ञासाओं का भी समाधान करने का कष्ट करें।

जिज्ञासा २०- प्रवचनसार गाथा २०१ ता.वृ.(*एवं पणमिय सिद्धे.....*) टीका में .... *'जिणवरवसहे'* शब्द की टीका/व्याख्या में *'सासादनादिक्षीणकषायान्ता एकदेश जिना उच्यन्ते* 'यह किस अपेक्षा से लिखा है? कृपया खुलासा करें।

जिज्ञासा २१-आपके अनुसार चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि सम्यक् चारित्र के न होने से मोक्षमार्गी ही नहीं है, तब फिर उसे जघन्य अंतरात्मा क्यों कहा है?

-द्विविध संगबिन शुद्ध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी।
मध्यम अंतर आतम है जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।

- यह छहढाला में पं. दौलतराम जी ने क्या गलत लिख दिया है? प्रमाण के लिए कृपया

कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा १९७ एवं वारसाणुवेक्खा गाथा १८ देखें-जिस में अविरत सम्यग्दृष्टि को जघन्य अंतरात्मा एवं जघन्य पात्र कहा है। अब यदि अंतरात्मा ही मोक्षमार्गी नहीं होगा तो फिर कौन होगा?

जिज्ञासा २२-क्या दिगंबर मुनिराज स्वाध्याय एवं संयम पालनार्थ चष्मा धारण कर सकते हैं? यदि कर सकते हैं तो चष्मे रखने का घर(केस) तथा काँच साफ करने के लिए वस्त्र का टुकड़ा भी रखना पड़ेगा। तो क्या वे परिग्रह की परिधि में आयेंगे या नहीं?

जिज्ञासा २३ - प्रवचनसार गाथा २३९ (*परमाणुपमाणं वा मुच्छा....*)-तत्त्वप्रदीपिका टीका की उत्थनिका(*अथात्मज्ञानशून्यस्य सर्वागमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौग - पद्यमप्यकिंचित्करमित्यनुशास्ति।.....*)में आत्मज्ञानशून्य शब्द का प्रयोग भावलिंगी या द्रव्यलिंगी मुनि-किसके लिए किया गया है?

जिज्ञासा २४- प्रवचनसार गाथा २३८ (*जं अण्णाणी कम्मं खवेदि.....*)-तत्त्वप्रदीपिका टीका में एवं उत्थनिका (*अथात्मज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान संयतत्वानां यौगपद्येऽप्यात्म ज्ञानस्य मोक्षमार्गसाधकतमत्वं द्योतयति*) में आत्मज्ञान का क्या अर्थ है? जिसे मोक्षमार्ग का साधकतम कहा है ! तथा आत्मज्ञानशून्य को अज्ञानी कहा है !

जिज्ञासा २५ - क्या दि. मुनिराज रात्रि में बोल सकते हैं? उपदेश दे सकते हैं? इस बारे में आगम क्या कहता है?

जिज्ञासा २६ - क्या वर्तमान काल में दि. मुनिराज एकलविहारी हो सकते हैं? क्या एकलविहारी होना सर्वथा निषिद्ध है?

जिज्ञासा २७ - उद्दिष्टाहार त्यागी व्रतियों को किन-किन सावधानियों को रखना चाहिए जिससे उद्दिष्टाहार का ग्रहण न हो। क्या आहारदाता श्रावक को व्रती/दो प्रतिमाधारी श्रावक होना अनिवार्य है? क्या अव्रती पाक्षिक श्रावक से उद्दिष्टाहार त्यागी आहार ग्रहण कर सकते हैं या नहीं?

(उपरोक्त तत्त्वचर्चा में कुछ आगम के अभिप्राय से विरूद्ध लिखा गया हो तो हे जिनवाणी माँ, एवं ज्ञानी जन मुझ अबोध बालक को क्षमा कर सद्बुद्धि प्रदान करना। भ. महावीर निर्वाण दिवस (दीपावली पर्व) पर मिथ्यात्व अंधकार का निर्वाण हो जगत में सम्यक्त्व का उजाला फैले इस पवित्र भावना के साथ।

आपका शिवाकांक्षी , ब्र. हेमचंद जैन, 'हेम'

धर्म्यध्यान-आगम के आलोक में

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥८८॥ मोक्षपाहुड

अर्थ-बहुत कहने से क्या साध्य है?जो नरप्रधान अतीत काल में सिद्ध हुए हैं और आगामी काल में सिद्ध होंगे, वह सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।

रतनलाल बैनाडा पंचशील 1/ 205 बी, प्रोफेसर्स कॉलोनी
हरीपर्वत, आगरा-
फोन - (0562)285 1428 - 285 2278

दि. 01.11.2005

आ. हेमचंद्रजी सा. जयजिनेंद्र,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। सारे विषय देखे। सोचता हूँ कि यदि आपको वर्तमान काल के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान एवं चारित्र के धनी पू. आ. श्री के चिंतन भी आगम विरूद्ध लगते हैं तो मेरी चर्चा से कुछ भी फल निकलना संभव नहीं है। फिर भी आप से अनुरोध है कि नीचे लिखे विषयों पर आगम प्रमाण शीघ्र भेजने का कष्ट करें। ताकि मैं उनको दृष्टिगत रखते हुए आपके पत्र का उत्तर दे सकूँ। -

१. पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में व्यवहार सम्यक्त्व होता है।

२. निश्चय सम्यक्त्व, चतुर्थ गुणस्थान या गृहस्थ अवस्था में होता है।

३. निश्चय सम्यक्त्व पहले होता है, व्यवहार सम्यक्त्व बाद में । या दोनों एक साथ ही उत्पन्न होते हैं।

४. राजा श्रेणिक के निश्चय सम्यक्त्व है(मैंने प्रमाण दिया था कि महाराजा भरत के व्यवहार सराग सम्यक्त्व-था। आप भी कोई प्रमाण दीजिए कि राजा श्रेणिक के निश्चय सम्यक्त्व है।

५. अनंतानुबंधी के अभाव में स्वरूपाचरण चरित्र होता है।

६. स्वरूपाचरण की परिभाषा।

७. चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है। (मैंने प्रमाण दिये हैं कि सप्तम गुणस्थान से शुद्धोपयोग होता है,आप भी प्रमाण भेजें कि चतुर्थ से होता है।)

८. चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति होती है।

९. अविरत सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी हैं।

१०. शुभ भाव से संवर-निर्जरा नहीं होती।

११. आपने 'आद्या सम्यक्त्व चारित्रे।'(पृ.१४ का अर्थ-प्रथम मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी वाले क्रोध-मान-माया-लोभ सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों को नहीं होने देते हैं।' यह लिखा है। यह गलत है। कृपया दो बारा विचार कर सही अर्थ ग्रंथ में देख कर लिखिएगा।

निवेदन-आप मनमानी चर्चा करते हैं। जब कि मुझे आगम वाक्य चाहिए। मुझे आप भावार्थ या अपना मंतव्य न लिखें। मुझे तो आचार्यों के श्लोक या टीका आदि मात्र ही लिखे। हमारी आपकी चर्चा का आधार आगम है। साथ ही पंडितों के प्रमाण न दें। (चाहें पं. टोडरमलजी हो, या पं. गोपालदास जी हो, पंचाध्यायीकार हो या अन्य।)आगम-लिखित आचार्यों के प्रमाण से ही चर्चा करें तो श्रेष्ठ रहेगा। मुझे तो बारहवीं शताब्दि तक के लिखे आचार्य ही प्रमाण रहते हैं। आशा है आप शीघ्र उत्तर भेजने का कष्ट करेंगे ।

शुभेच्छु - रतनलाल बैनाड़ा

ब्र.पं. हेमचंद्र जैन

दि. २८.११.२००५

भोपाल

आदरणीय आगमवेत्ता विद्वद्वर पं.श्री रतनलाल जी बैनाडा जैन

सादर दर्शन विशुद्धि सह जयजिनेंद्र।

आपका ०१.११.०५ का लिखा पत्र मैसूर(कनकगिरि) यात्रा से वापिस लौटने पर प्राप्त हुआ। पत्र पढ़कर मन को किंचित् खेद हुआ कि आपने मुझे आगमाधार बिना मनमानी चर्चा करने वाला समझ लिया,जब कि मेरा जीवन आगम प्रमाण से वीतरागी वाणी को वीतराग भाव से साधर्मी वात्सल्यभाव से ग्रहण करने का रहा है। जो भी मैंने अपने पूर्व पत्र में लिखा, बिना आगम प्रमाण के कुछ नहीं लिखा, फिर मुझे अपने अल्प क्षयोपशम ज्ञान में आगम विहित कथनों जैसा भाव भासित हुआ, वही आपके विचारार्थ प्रस्तुत किया है। मैं एक मैकेनिकल इंजिनियर/वैज्ञानिक हूँ,अतः परीक्षा प्रधानी विशेष हूँ एवं निम्न लिखित श्लोक में विश्वास रखता हूँ।

सूक्ष्मं जिनोदित तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।

आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनः।

आपने अब मेरे द्वारा लिखित पत्र को, अभिप्राय को, धैर्य से निष्पक्ष भाव से पढ़ लिया होगा, तथा जो कुछ नवीन जिज्ञासाएँ लिखी थी, उनका भी समाधान अवश्य भेजें, मैं पुनः पुनः विचार करूँगा। मैं रंचमात्र भी हठाग्रही,पूर्वाग्रही,दुराग्रही नहीं हूँ, मात्र इस पर्याय को सत्यग्राही किंवा सत्याग्रही(?)बनकर वीतराग देव-शास्त्र-गुरू की अनन्य श्रद्धापूर्वक समर्पित किया है। जैसा कि निम्न श्लोक में कहा है-

पक्षपातो न मे वीरे, न च द्वेषः कपिलादिषु।

युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥

अस्तु , आपने मुझसे कुछेक बातों के आगम प्रमाण देने को कहा है। तथा पंडितों (पं. टोडरमल जी, पं. गोपालदास जी बरैया, पंचाध्यायीकार कवि पं. राजमलजी पांडे आदि) के प्रमाण नहीं देने को कहा है। मात्र १२ वीं शताब्दि तक के ही आचार्य भगवंतों के कथनों को प्रामाणिक स्वीकार किया है। तो क्या आप १२ वीं शताब्दि से आज तक २१ वीं शताब्दि में या अब आगे पंचम काल के अंत तक सत्य सनातन दिगंबर जैन धर्म की/कुंदकुंद आम्नाय की मूलधारा का विच्छेद हो गया मानते हैं? यह निश्चित ही गंभीर विचारणीय बिंदु है। परमपूज्य श्रीमद् जयसेनाचार्य देव की समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय ग्रंथों पर लिखित अथवा परमात्मप्रकाश, बृहद्द्रव्य संग्रह पर श्री ब्रह्मदेवसूरि विरचित संस्कृत टीकाओं को आप प्रामाणिक नहीं मानते हैं? ऐसा दुःसाहस मैं नहीं कर सकता हूँ। मैं न तो आगम विरोधी हूँ, और न ही किसी व्यक्ति विशेष का ! हाँ, मैं आगम-अध्यात्म विरोधी कथनों का अवश्य विरोधी हूँ। और आगम प्रमाण कथनों का यथातथ्य

स्वरूप प्रगट करने वाले आचार्यकल्प पं. टोडरमल जी, पं.दौलतराम जी आदि का अनंत उपकार मानता हूँ। संक्षेप में कहूँ तो अनंत ज्ञानियों (४, ५, ६ गुणस्थानवर्ती ज्ञानियों द्वारा लिखित, वर्तमान में उपलब्ध जिनागम)का एकसा अभिप्राय रूप मत/एकमत होता है तथा अनात्मज्ञ अज्ञानी के अनंत (परस्पर विरूद्ध)मत या अनेक मत-पक्ष होते हैं-मानता हूँ। वर्तमान में जो भी भगवत् कुंदकुंदाचार्य की मूलान्माय के पोषक शास्त्र हैं, वे सर्व ही मुझे मान्य हैं।

जब आपने मुझे प्रतिबंधित कर दिया कि १२ वीं शताब्दि तक के लिखे आचार्य ही प्रमाण रहते हैं तो फिर मैं इतनी प्रबल धारणा वाला व्यक्ति नहीं हूँ कि आपके द्वारा वांछित आगम प्रमाण दे सकूँ जो १२ वीं शताब्दि तक के आचार्यों द्वारा ही लिखे गये हों। तथापि किंचित प्रयास कर रहा हूँ, पक्षातिक्रांत होकर निर्णय करना होगा।

१. कोई भी आगमज्ञ यह नहीं कहता कि प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थानों में व्यवहार सम्यक्त्व होता है। प्रथम गुणस्थान में तो तत्त्वविचार, देव-गुरू-धर्म की सामान्य प्रतीति होती है। उसके बल पर ही यह जीव स्व-पर भेद विज्ञान करता हुआ यथार्थ तत्त्व प्रतीति करता है और शुद्धात्माभिमुख हो सविकल्प स्व-संवेदनपूर्वक निर्विकल्प स्वरूपोपलब्धि रूप विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान रूप, निश्चय सम्यक्त्व रूप आत्मानुभूति को प्राप्त कर चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि हो जाता है। एतदर्थ अज्ञानी-ज्ञानी का लक्षण समयसार आत्मख्याति गाथा-१९ एवं ७५ में टीका में लिखा ही है। सम्यग्दर्शन की परिभाषाएँ प्रथमानुयोग एवं चरणानुयोग के अनुसार -

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥

तथा द्रव्यानुयोगानुसार - *'तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।'*
तथा करणानुयोगानुसार- *'मिथ्यात्वोदयाभावात् दर्शनमोहोदयाभावात्'* होने पर ही सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है।

समयसार जी आत्मख्याति गाथा २७६-२७७ में अभव्य को तत्त्वश्रद्धान होने पर भी मिथ्या श्रद्धान रहता है - लिखा है तथा प्रवचनसार जी तत्त्व प्रदीपिका गाथा - २३९ में आत्मज्ञान शून्य को आगमज्ञान, तत्त्वश्रद्धान एवं संयम तीनों की युगपतता होने पर भी अकिंचित्कर कहा है। इससे सिद्ध होता है कि मात्र व्यवहार दृष्टि से सामान्य जैनी जनों को जिनको बाह्य जैनीपना (गृहित मिथ्यात्व से रहितपने रूप)प्रगट हो उनको व्यवहाराभासरूप व्यवहार सम्यक्त्व होता है, कहा जा सकता है, निमित्तों की ओर से द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव को सासादन सम्यग्दृष्टि कहा है। उसके सम्यग्दर्शन घातक अनंतानुबंधी कषाय का उदय हो आने से सासादन (विराधना सहित) सम्यग्दृष्टि कहा है। परमार्थत. औपशमिक सम्यक्त्व का ही काल है। इसीलिए प्रवचनसार गाथा-२०१ ता.वृ. टीका में दूसरे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों को एकदेश जिन तक कहा है।

इसका काल जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण ही है और छद्मस्थ असंख्यात समयोपरांत ही अपने कषाय भावों को जान पाता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के परिणाम तो केवलज्ञान गम्य ही होते हैं।

मिश्र मोहनीयोदय के निमित्त से मिश्र तृतीय गुणस्थान(मध्यम अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण) होता है और इसके भी परिणाम केवलज्ञान गम्य हैं। तत्त्वों का सत्य-असत्य रूप श्रद्धान-अश्रद्धान एक ही काल में वर्तता है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान ही तत्त्वनिर्णय कर सच्चा बनता है। इसीलिए धवला १/ ३९ पृ. पर उसे मंगलकारी सिद्ध किया है।

२. निश्चयसम्यक्त्व गृहस्थावस्था/ चतुर्थ गुणस्थान में होता है। इसका प्रमाण आप स्वयं ने परमात्म प्रकाश २/१८ की टीका से इसप्रकार दिया है।-

*'निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थंकरपरमदेव भरतसगररामपाण्डवादीनां विद्यते,नच तेषां वीतराग चारित्रमस्तीति परस्परविरोधः अस्ति, चेतर्हितेषासंयतत्त्वं कथमिति पूर्वपक्षः। तत्र परिहारमाह। तेषां शुद्धात्मैवोपादेयभावनारूपं **निश्चयसम्यक्त्वं** विद्यते। परं किन्तु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रतप्रतिज्ञाभङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते। .....'*

३. परमार्थतः निश्चय-व्यवहार सम्यक्त्व दोनों एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। तथापि कुदेवादिक की मान्यता से रहित एवं अष्टमूलगुण सहित व्यक्ति को ही जिनधर्म की देशना ग्रहण कर सकने योग्य पात्र कहा है,ऐसी निर्मल बुद्धिवाले जीव के जो विशुद्धि प्रगट है वही वीतरागी देव-शास्त्र-गुरू-धर्म की मान्यता वाला पूर्वचर व्यवहारधर्म धारक पात्र जीव है। तदर्थ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लो.७४देखें जिसमें मूलगुण रहितको देशना का अपात्र कहा है

अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वरूप बृ.द्रव्यसंग्रह गाथा ४५ की टीका में इसप्रकार लिखा है- मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय होने पर अथवा अध्यात्मभाषा से निजशुद्धात्माभिंमुख परिणाम होने पर शुद्धात्मभावनां से उत्पन्न, निर्विकार वास्तविक सुखामृत को उपादेय करके संसार-शरीर और भोगों में जो हेयबुद्धियुक्त सम्यग्दर्शन से शुद्ध है वह चतुर्थगुणस्थान व्रतरहित दार्शनिक कहलाता है।

इस परिभाषा में सम्यक्त्व की परिभाषा करणानुयोग, द्रव्यानुयोग एवं चरणानुयोग तीनों अनुयोगों से समन्वित है। यही निश्चय-व्यवहार सम्यक्त्व का एक ही काल में उत्पन्न होना है। जैसे पुत्रादि संतान उत्पन्न होने पर जन्मदाता स्त्री-पुरुष को माता-पिता की संज्ञा मिलती है, किंतु विवाहादि पूर्वचर व्यवहार बिना सच्चा निश्चय व्यवहार लागू नहीं पड़ता।

पुनश्च, श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ३३ में गृहस्थ सम्यग्दृष्टि को मोक्षमार्गस्थ कहा ही है, जब कि सम्यक्त्व रहित मुनि को मोक्षमार्गस्थ नहीं कहा।

तथा बृ.द्रव्यसंग्रह गाथा - ४७ मूल में ही कहा है कि -

दुविहंपि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

अर्थ-(आत्म)ध्यान करने से मुनिराज नियम से निश्चय और व्यवहार रूप मोक्षमार्गको प्राप्त करते हैं। अतः तुम चित्त को एकाग्र करके ध्यान का सम्यक् प्रकार से अभ्यास करो। हमको भी इसी प्रकार से ध्यान करने की प्रेरणा गाथा -४८ में दी है।

४. राजा श्रेणिक के क्षायिक सम्यक्त्व/वीतराग सम्यक्त्व है वह निश्चय सम्यक्त्व ही है। इसके आगम प्रमाण मैंने अपने १. ११. ०५ के पत्र में दिये हैं। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, अमितगति श्रावकाचार, पंचास्तिकाय, श्लोकवार्तिक, मो.मा.प्रकाशक के प्रमाणों से सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन बाबद् स्पष्टता हो जाती है तथा पंचास्तिकाय गाथा १६० में तो गृहस्थ व मुनिराज के सम्यग्दर्शन को स्पष्टतया समान होते हैं - कहा है।

५. अनंतानुबंधी के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र होता है-ऐसा सीधा आगम वाक्य देखने में नहीं आया। सम्यक्त्वाचरण चारित्र होता है, ऐसा तो आया ही है तथा शुद्धोपयोग के बिना दर्शनमोह का क्षय नहीं होता - ऐसा प्रवचनसार गाथा- ८० (जो जाणदि अरहंतं)की ता.वृ.टीका में स्पष्ट जयसेनाचार्य देव ने लिखा है। अर्थात् क्षायिक सम्यग्दर्शन शुद्धोपयोग रूप निर्विकार स्वसंवेदन बिना नहीं होता-यह स्पष्ट है और औपशमिक सम्यक्त्व क्षायिकवत् निर्मल होता ही है। अतः इससे निश्चय होता है कि स्वात्मानुभूति/शुद्धोपयोग बिना(भले बिजली की चमकारवत् अत्यल्प हो)औपशमिक सम्यक्त्वोपलब्धि संभव नहीं है।

६. स्वरूपाचरण चारित्र की परिभाषा-जैसा कि पूर्व विद्वान परंपरा ने स्वीकार किया है वही देखने में आती है-जो कि अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में प्रगट होता है। फिर भी जब अनंतानुबंधी चारित्रमोह की प्रकृति है अतः उसके जाने पर जो भी शुद्धि अंश प्रगट होता है, उसे कुछ न कुछ तो नाम देना ही पड़ेगा। तभी तो धवला भाग १-पृ.१६५ दसवें सूत्र (सासण सम्माइट्ठी....) की टीका में आचार्य वीरसेन स्वामीने यह लिखा है कि -

....इति चेत्,न सम्यग्दर्शनचारित्र प्रतिबन्ध्यानन्तानुबंधी उदयोत्पादितविपरीताभिनिवेशस्यं तत्र सत्वाद् भवति मिथ्यादृष्टिरपि तु मिथ्यात्वकर्मोदयजनित विपरीताभिनिवेशाभावात् न तस्य मिथ्यादृष्टि व्यपदेशः किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते। किमिति मिथ्यादृष्टि रिति न व्यपदिश्यते चेत्र,अनंतानुबंधिनां द्विस्वभावत्व प्रतिपादन फलत्वात्। न च दर्शनमोहनीय स्योदयादुपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा सासादन परिणामः.....प्राणिनामुपजायते तेन मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरितिचोच्येत। यस्माच्च विपरीताभिनिवेशोऽ भूदनन्तानुबंधिनो,न तद्दर्शनमोहनीयं,तस्य चारित्रावरणत्वात्। तस्योभयप्रतिबंधकत्वा दुभय- व्यपदेशो न्याय्य इतिचेत्र, इष्टत्वात्।

अर्थ-शंका-यदि ऐसा है तो इसे (सासादन सम्यग्दृष्टि को) मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिए, सासादन संज्ञा देना उचित **नहीं** है?

समाधान-नहीं, क्यों कि सम्यग्दर्शन और(स्वरूपाचरण)चारित्र का प्रतिबंध करन वाले अनंतानुबंधी कषाय के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थान में पाया जाता है। इसलिए द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यादृष्टि है किंतु मिथ्यात्वकर्म के उदय से उत्पन्न

हुआ विपरीताभिनिवेश वहाँ नहीं पाया जाता है, इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहते हैं, किंतु सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

शंका-पूर्व कथन के अनुसार जब वह मिथ्यादृष्टि ही है तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि संज्ञा क्यों नहीं दी गयी है?

समाधान-ऐसा नहीं है, क्यों कि सासादन गुणस्थान को स्वतंत्र कहने से अनंतानुबंधी प्रकृतियों की द्विस्वभावता का कथन सिद्ध हो जाता है।

दर्शन मोहनीय के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम से जीवों के सासादनरूप परिणाम तो उत्पन्न होता नहीं है, जिससे कि सासादन गुणस्थान को मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहा जाता, तथा जिस अनंतानुबंधी के उदय से दूसरे गुणस्थान में विपरीताभिनिवेश होता है, वह अनंतानुबंधी दर्शनमोहनीय का भेद न होकर चारित्र का आवरण करने वाला होने से चारित्रमोहनीय का भेद है। इसलिए दूसरे गुणस्थान को मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादन सम्यग्दृष्टि कहा है।

शंका-अनंतानुबंधी सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबंध होने से उसे उभयरूप (सम्यक्त्व चारित्रमोहनीय)संज्ञा देना न्याय्य संगत है?

समाधान-यह आरोप ठीक नहीं, क्यों कि यह तो हमें इष्ट ही है। अर्थात् अनंतानुबंधी को सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबंधक माना ही है।

वस्तुतः विपरीताभिनिवेश दो प्रकार का होता है, अनंतानुबंधी जनित और मिथ्यात्वजनित! दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधीजनित विपरीताभिनिवेश ही पाया जाता है। इसलिए मिथ्यात्व गुणस्थान से भिन्न इसे स्वतंत्र सासादन गुणस्थान माना गया है।

७. चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है। ऊपर बिंदु क्र.३ बृहद् द्रव्यसंग्रह की टीका के आधार से अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्ती का स्वरूप/ परिभाषा दी गयी है। उसी प्रकार प्रवचनसार गाथा ८० ता.वृ. टीका में आया है। जिसे मैं पूर्व पत्रों में भी उद्घृत करता आ रहा हूँ। उसमें इस प्रकार कथन है-.....

.....अथ चत्ता पावारम्भ इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादि विनाशाभावे शुद्धात्मलाभो न भवति।..... तत् आत्मपरिज्ञानात् तस्य मोहो दर्शनमोहो लयं विनाशं क्षयं यातीति ।.....इत्थंभूतं द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं पूर्वमर्हदभिधाने-परमात्मनिज्ञात्वापश्चान्निश्चयनयेन तदेवागमसारपदभूतयाऽध्यात्म भाषया निजशुद्धात्म-भावनाभिमुखरूपेण सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञानेन तथैवागम भाषयाधःप्रवृत्ति करणापूर्व -करणानिवृत्तिकरण संज्ञ दर्शनमोहक्षपण समर्थ परिणाम विशेषबलेन पश्चादात्मनि योजयति। तदनंतरमविकल्पस्वरूप रूपे प्राप्ते..... दर्शनमोहान्धकारः प्रलीयते इतिभावार्थः ॥८०॥

८. चतुर्थगुणस्थान में शुद्धात्मानुभूति होती है। समयसार गाथा १३ आत्मख्याति टीका में -*'एवमसावकत्वेन द्योतमानः शुद्धनयत्वेनानुभूयत एव । या तु अनुभूतिः सात्मख्याति -रेवात्मख्यातिस्तुसम्यग्दर्शनमेव । इति समस्तमेव निरवद्यम्।'*.... ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।

पुनः समयसार गाथा १९ तात्पर्यवृत्ति टीका में - *'अप्रतिबुद्धः स्वसंवित्तिशून्यो बहिरात्मा-भवति तावत्कालमिति। अत्र भेदविज्ञानमूलां शुद्धात्मानुभूतिं स्वतः स्वयंबुद्धयापेक्षया ये लभंते ते पुरुषाः शुभाशुभ बहिर्द्रव्येषु विद्यमानेष्वपि मुकुरन्दवदविकारा भवन्तीति भावार्थः।'*..... समयसार गाथा ५० से ५५ तक आत्मख्याति टीका में अनेक बार **'शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्'** शब्द आया है, जो ध्यान देने लायक है।

९. अविरतसम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ३३ में स्पष्ट लिखा है-

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थोनिर्मोहोनैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

१०. शुभभाव से संवर-निर्जरा नहीं होती, प्रकृत में पुण्यबंध होता है और अघातिया कर्मों को पाप प्रकृतियों का आस्रव किंचित् रुक जाना(संवर?)संक्रमण हो जाना-पुण्यरूप परिणम जाना होता है परंतु आत्मगुण घातक घातिकर्मो का आना नहीं रुकता। देखो-प्रवचनसार गाथा १८०-१८१ की टीका-

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति भणिदमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खय कारणं समये ॥१८१॥

११. *'आद्या सम्यक्त्वचारित्रे द्वितीया धनत्यणुव्रतं । तृतीया संयम तुर्या यथाख्यातं कुधादयः।'* इसका अर्थ मैंने बिक्कुल सही लिखा है। क्यों कि मूल में 'सम्यक्त्वचारित्रे' शब्द है। आप मूल अर्थ में भी भूल निकाल रहे हैं? विचारणीय है। अस्तु ! आप पुनर्विचार करें। आगम-अध्यात्म विरूद्ध कुछ लिखा हो तो क्षमा करें।

शेष शुभ, कृपादृष्टि बनाये रखें। पत्रोत्तर देवें।

भवदीय शिवाकांक्षी- ब्र. हेमचंद जैन 'हेम'

विशेष-११-१२ दिसंबर ०६ के पश्चात् मंगलायतन-अलीगढ़ जाने का विचार है। संभव हो तो पधारें। मिलकर खुशी होगी। - ब्र. हेमचंद जैन 'हेम'

धर्म्यध्यान-आगम के आलोक में

परमानंदसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्॥ .....परमानंद स्तोत्रम् १॥
आनंद ब्रह्मणो रूपम् , निजदेहे व्यवस्थितम्॥
ध्यानहीना न पश्यन्ति , जात्यंधा इव भास्करम्॥.....परमानंद स्तोत्रम् ९॥
सद्ध्यानं क्रियते भव्यैः मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम्॥.....परमानंद स्तोत्रम् १०॥
निर्विकल्पसमुत्पन्नं ज्ञानमेवसुधारसम्।
विवेक मंजुलिं कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥ ...परमानंद स्तोत्रम्

दि. १५. ०१. ०६.

आदरणीय आगमवेत्ता विद्वद्वर श्री पं.रतनलाल जी बैनाड़ा जैन-आगरा,

सादर जयजिनेंद्र, दर्शनविशुद्धि।

आपके ०१.११.२००५ के पत्र में वांछित आगम प्रमाण मैंने अपने २८.११.०५ के पत्रोत्तर में भेजे थे। जो आपको दिसंबर के प्रथम सप्ताह में मिल गया होगा। अब आपने मेरे द्वारा पूर्व दो पत्रों में दि.३०.०९.०५/०१.११.०५ एवं २८.११.०५)उद्धृत आगम प्रमाणों का सर्व पूर्वाग्रह छोड़कर निष्पक्ष भाव से चिंतन मनन कर, व्यक्ति निष्ठता को छोड़कर आगम निष्ठता को शिरोधार्य कर समीचीन निर्णय/समाधान प्राप्त कर लिया होगा तथा जो उत्तर/विचारणीय बिंदु पुन: आपके ज्ञान में आये हों(जो आप मुझे विचारार्थ भेजने वाले थे) शीघ्र भेजने की कृपा करें।

मेरे और आपके बीच हुए उपारोक्त पत्राचार से, मैं आशा करता हूँ कि अब आपको निम्नलिखित तथ्यों/ सिद्धांतों का निश्चय/निर्णय हो गया होगा।

१.मोह का अर्थ मिथ्यात्व/ दर्शनमोह है न कि चारित्रमोह। दर्शनमोह है तो चारित्रमोह तो है ही।

२. मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी चतुष्क के अभाव में प्रगट होने वाला विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान रूप परिणाम ही निश्चय सम्यग्दर्शन है, जो यदि क्षायिक रूप हो तो चतुर्थ गुणस्थान से लेकर अरिहंत-सिद्धावस्था तक (सादि अनंतकाल पर्यंत) एक सा ही रहता है। देव-शास्त्र-गुरु एवं प्रयाजनभूत तत्त्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

३. 'क्षायिक'को वीतराग एवं 'औपशमिक/क्षायोपशमिक'को सराग सम्यग्दर्शन भी कहते हैं।

४. श्रावकावस्था में क्षायिक सम्यग्दर्शन को सराग सम्यग्दर्शन तथा मुनिदशा में उसे ही वीत-राग सम्यग्दर्शन कहते हैं। सरागावस्था में सराग एवं वीतरागावस्था में वीतराग नाम पाताहै।

५. सराग सम्यग्दर्शन को व्यवहार एवं वीतराग सम्यग्दर्शन को निश्चय सम्यग्दर्शन भी कहते हैं। परमार्थ से निजशुद्धात्मा की रुचि/प्रतीतिरूप निश्चयसम्यग्दर्शन तो चतुर्थ गुणस्थान में ही प्रगट पूर्ण हो जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन भेदरहित एक ही प्रकार का है।

६. अनंतानुबंधी निश्चय से चारित्रमोह की प्रकृति होने पर भी सम्यक्त्व एवं चारित्र दोनों का घात करती होने से द्विस्वभावी है। जैसे कैन्सर रोग मनुष्य पर्याय के नाश का कारण है, वैसे ही अनंतानुबंधी का उदय सम्यक्त्व के नाश का कारण है।

७.सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व(दर्शनमोह) का अनुदय होने से मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला विपरीताभिनिवेश वहाँ नहीं पाया जाता इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहते, किंतु सम्यग्दर्शन और चारित्र का प्रतिबंध करने वाली अनंतानुबंधी कषाय के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश वहाँ पाया जाता है, इसी से इसको सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आसादना सहित जिसकी समीचीन दृष्टि होती है वह सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

८. विपरीताभिनिवेश दो प्रकार का होता है-एक अश्रद्धान रूप और एक अस्थिरतारूप ! द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म रहित निजशुद्धात्मा की श्रद्धा नहीं होना,मिथ्यात्वोदयजनित विपरीता- भिनिवेश है और स्वरूप में स्थिरता(लीनता)नहीं होना चारित्रमोहोदयजनित विपरीताभिनिवेश है। अतत्त्वश्रद्धा(प्रयोजनभूत तत्त्वों की श्रद्धा नहीं होने)का कारण मिथ्यात्व (दर्शनमोह)है और अस्थिरता(राग-द्वेष रहित निर्विकल्पता का नहीं होना)का कारण कषाय(चारित्रमोह) है।

९. प.पू.आ.वीरसेन महाराज ने (धवल पु.१/१६३) यही बात सिद्ध की है कि दूसरे गुणस्थान- वर्ती जीव को सासादन सम्यग्दृष्टि क्यों कहा? मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं कहा?क्यों कि विपरीताभिनिवेश मिथ्यात्व जन्य और अनंतानुबंधी जन्य दो प्रकार का होता है। सो दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी जन्य विपरीताभिनिवेश हुआ है ,जो कैन्सर रोग की तरह सम्यक्त्व का घातक है। यहाँ मिथ्यात्वोदय जन्य विपरीताभिनिवेश नहीं हुआ होने से दूसरे गुणस्थानवर्ती को आसादना सहित सम्यग्दृष्टि कहा है। मिथ्यादृष्टि नहीं कहा। यही बात आ.क.पं.टोडरमल जी ने सिद्ध की है।

१०. अनंतानुबंधी यद्यपि चारित्रमोहनीय ही है, तथापि वह स्वक्षेत्र तथा परक्षेत्र का घात करने की शक्ति से संयुक्त है। अर्थात् चारित्र(स्वक्षेत्र)एवं सम्यक्त्व(परक्षेत्र)को घातने की शक्ति से संयुक्त है। अनंतानुबंधी दर्शनमोहनीय का भेद न होकर चारित्र का आवरण करने वाला होने से चारित्रमोहनीय का ही भेद है। इसलिए दूसरे गुणस्थान को मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादन सम्यग्दृष्टि कहा है तथा अनंतानुबंधी को सम्यक्त्व व चारित्र इन दोनों का प्रतिबंधक माना ही है। (देखो-धवल १/१६५ व ६/४२)

११. आ.क.पं.टोडरमल जी का ज्ञान तर्क/विचारणा सहित अगाध गंभीरता लिए हुए था, इसीसे उनके सामने धवल ग्रंथ उपलब्ध न होने पर भी यह निष्कर्ष निकालकर मो.मा.प्र.९ वें अध्याय में यह लिखा है-

'अनंतानुबंधी के उदय से क्रोधादि परिणाम होते हैं, कुछ अतत्त्वश्रद्धान नहीं होता। इसलिए अनंतानुबंधी चारित्र ही का घात करती है ,सम्यक्त्व का घात नहीं करती। सो परमार्थ से है तो ऐसा ही, परंतु अनंतानुबंधी के उदय से जैसे क्रोधादिक होते हैं, वैसे क्रोधादिक सम्यक्त्व होने पर नहीं होते। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक पाया जाता है। .....इसलिए उपचार से अनंतानुबंधी के भी सम्यक्त्व का घातकपना कहा जाये तो दोष नहीं है। अर्थात् पं. टोडरमल जी ने अनंतानुबंधी की द्विस्वभावता मान्य की है।

भवदीय- हेमचंद जैन

-(विद्वत्जनों से विशेष प्रार्थना है कि उक्त चर्चा के विषय में अपने अभिप्राय निम्न पते पर अवश्य अवगत करावें।)

ब्र. हेमचंद जैन 'हेम' एम. आय. जी.,१०, सेक्टर ए, सोनागिरि,
भेल -भोपाल (म.प्र.) 462 002, (फोन-0755 - 2681 049)

जिज्ञासा समाधान-जिनभाषित

(अंक दिसंबर- २००५, पृ.२६)

समाधान कर्ता - पं. श्री रतनलालजी बैनाड़ा, आगरा

प्रश्नकर्ता -ब्र. हेमचंद जैन, 'हेम' , भोपाल

जिज्ञासा-कृपया इन मान्यताओं के बारे में अपने विचार लिखें-

१. परमार्थतः अनंतानुबंधी चारित्र की प्रकृति है, वह चारित्र ही का घात करती है। सम्यक्त्व का घात नहीं करती है।

२. दूसरे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व का ही काल है, इसलिए उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहा, सासादन मिथ्यादृष्टि नहीं कहा।

समाधान - उपरोक्त जिज्ञासा १. (अ) के समाधान में-

धवल पुस्तक १ पृष्ठ १६३ का कृपया अवलोकन करें। वहाँ इसप्रकार कहा है,

प्रश्न-सासादन गुणस्थान वाला जीव मिथ्यात्व का उदय होने से मिथ्यादृष्टि नहीं है। समीचीन रुचि का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। दोनों को विषय करने वाली सम्यग्मिथ्यात्व रूप रुचि का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। इनके अतिरिक्त और कोई चौथी दृष्टि है नहीं ,क्यों कि समीचीन -असमीचीन और उभयरूप दृष्टि के आलम्बन भूत वस्तु के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु पायी नहीं जाती है। इसलिए सासादन गुणस्थान असत्स्वरूप है।

उत्तर- ऐसा नहीं है। क्यों कि सासादन गुणस्थान में विपरीत अभिप्राय रहता है। इसलिए उसे असद्दृष्टि ही समझना चाहिए।

प्रश्न-यदि ऐसा है तो इसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिए। सासादन संज्ञा देना उचित नहीं है?

उत्तर-नहीं, क्यों कि सम्यग्दर्शन और चारित्र का प्रतिबंध करने वाली अनंतानुबंधी कषाय के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थान में पाया जाता है। इसलिए द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यादृष्टि है किन्तु मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश वहाँ नहीं पाया जाता है, इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहते हैं । केवल सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्रश्न-उपर के कथनानुसार जब वह मिथ्यादृष्टि है तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि संज्ञा क्यों नहीं दी गयी?

उत्तर-ऐसा नहीं है ,क्यों कि सासादन गुणस्थान को स्वतंत्र कहने से अनंतानुबंधी प्रकृतियों की द्विस्वभाव का कथन सिद्ध हो जाता है।

(आ) गोम्मटसार कर्मकांड टीका ५४६/७१/ १२ में इसप्रकार कहा है,

'मिथ्यात्वेन सहोदीयमानाः कषायाः सम्यक्त्वंघ्नन्ति । अनन्तानुबंधिना च सम्यक्त्वसंयमौ।'

अर्थ-मिथ्यात्व के साथ उदय होने वाली कषाय सम्यक्त्व को घातती है और *अनंतानुबंधी*

के द्वारा सम्यक्त्व के द्वारा सम्यक्त्व और संयम घाता जाता है।

(इ)श्री धवला पु.१, पृष्ठ ३६१ पर इसप्रकार कहा है- 'मिथ्यादृष्टि जीवों के भलेही दोनों (मति व श्रुत) अज्ञान होवें, क्यों कि वहाँ पर वे दोनों ज्ञान अज्ञानरूप नहीं होना चाहिए?

उत्तर-नही, क्यों कि विपरीताभिनिवेश को मिथ्यात्व कहते हैं। और वह विपरीताभिनिवेश मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी इन दोनों के निमित्त से उत्पन्न होता है।

(ई) पंचसंग्रह प्राकृत- १/११५ में इसप्रकार कहा है,

'पढमो दंसणघाई विदिओ तह घाइ देसविरइ त्ति तइओ संजमघाइ चउत्थो जहरवाय घाइया।' प्रथम अनंतानुबंधी कषाय सम्यग्दर्शन का घात करती है, द्वितीय अप्रत्याख्याना- वरण कषाय देशविरति का घातक है।, तृतीय प्रत्याख्यानावरण कषाय सकल संयम की घातक है और चतुर्थ संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र की घातक है।

(उ)अनंतानुबंधी यद्यपि चारित्रमोहनीय ही है तथापि वह स्वक्षेत्र तथा परक्षेत्र में घात करने की शक्ति से युक्त है। श्री धवल पु. ६, पृष्ठ ४२-४३ में कहा है कि *'अणंताणुबंधिणो----- सम्मत्तचाणित्ताणं विरोहिणी । दुविहसत्तिसंजुदत्तादो। --------- एदेसिं------सिद्धं दंसणमोहणीयत्तं चरित्तमोहणीयत्तं च।'*

अर्थ-गुरुउपदेश तथा युक्ति से जाना जाता है कि अनंतानुबंधी कषायों की शक्ति से दो प्रकार की है। इसलिए सम्यक्त्व व चारित्र इन दोनों को घातने वाली दो प्रकार की शक्ति से संयुक्त अनंतानुबंधी है। ------ इसप्रकार सिद्ध होता है किअनंतानुबंधी दर्शनमोहनीय भी है,चारित्र मोहनीय भी है। अर्थात् *सम्यक्त्व तथा चारित्र को घातने की शक्ति से संयुक्त है।* इसप्रकार अनंतानुबंधी की दोनों शक्तियों को स्वीकार करना चाहिए।

(ऊ)श्री धवला पु.१, पृष्ठ १६५ पर इसु प्रकार कहा है -

'अनंतानुबंधी की द्विस्वभावता का कथन सिद्ध हो जाता है तथा जिस अनंतानुबंधी के उदय से दूसरे गुणस्थान में विपरीताभिनिवेश होता है, वह अनंतानुबंधी दर्शनमोहनीय का भेद नहीं होकर चारित्र का आवरण करने वाला होने से चारित्रमोहनीय का भेद है।'

प्रश्न-अनंतानुबंधी सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबंधक होने से उसे उभयरूप संज्ञा देना न्याय संगत है?

उत्तर- यह आरोप ठीक नहीं है। क्यों कि यह तो हमें इष्ट ही है, अर्थात् *अनंतानुबंधी को सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबंधक माना ही है।*

(ए)श्री धवल पु. ६, पृष्ठ ४२ पर इसप्रकार कहा है-

प्रश्न-अनंतानुबंधी कषायों की शक्ति दो प्रकार की है। इस विषय में क्या युक्ति है?

उत्तर-ये चतुष्क दर्शनमोहनीय स्वरूप नहीं माने जा सकते क्यों कि सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के द्वारा ही आवरण किये जाने वाले दर्शनमोहनीय के फल का अभाव है और न इन्हें चारित्र मोहनीय स्वरूप ही माना जा सकता है , क्यों कि अप्रत्याख्यानावरणादि

कषायों के द्वारा आवरण किये गये *चारित्र के आवरण करने में फल का अभाव है।* इसलिए उपर्युक्त अनंतानुबंधी कषायों का अभाव ही सिद्ध होता है। किन्तु उनका अभाव नहीं है क्यों कि सूत्र में इनका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिए अनंतानुबंधी कषायों के उदय से सासादन भाव की उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है। इसही अन्यथानुपत्ति से इनके दर्शनमोहनीयता और चारित्रमोहनीयता अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र को घात करने की शक्ति का होना सिद्ध होता है।

पू. आचार्य वीरसेन महाराज आदि के उपरोक्त प्रमाणों से यह बिलकुल स्पष्ट है कि अनंतानुबंधी सम्यक्त्व का भी घात करती है । इतना और भी विशेष है कि मोक्षमार्ग प्रकाशक ९ वें अधिकार पं. टोडरमलजी ने इसप्रकार कहा है, 'यहाँ-

प्रश्न-जो अनंतानुबंधी तो चारित्रमोह की प्रकृति है। सो चारित्र को घातै, या करि सम्यक्त्व का घात कैसे सम्भवै?

ताका समाधान-अनंतानुबंधी के उदयतै क्रोधादिरूप परिणाम हो हैं। *किछु अतत्त्व श्रद्धान होता नाहीं। तातैं अनंतानुबंधी चारित्र ही को घातै है। सम्यक्त्व को नहीं घातै है।'* मोक्षमार्ग का यह कथन उपरोक्त आगमप्रमाण के अनुसार न होने से आगम सम्मत नहीं है।

जिज्ञासा-२ इसके समाधान में 'सासादन में उपशम सम्यक्त्व का काल है।'- इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व है। क्यों कि दूसरे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व है। क्यों कि दूसरे गुणस्थान वाला णासियम्मोत्तो(गो.जी.२०, प्रा.पं.सं.१/९ ; श्री धवल १/६६) अर्थात् नाशित सम्यक्त्व(जिसका सम्यक्त्व रत्न नष्ट हो चुका ऐसा जीव)कहलाता है। सासादन गुणी असद्दृष्टि है।(धवल १/१६५) वह उपशम सम्यक्त्व के काल के अंत में पतित-नाशित सम्यक्त्व होकर ही सासादन को प्राप्त होता है, स्थितिभूत उपशम सम्यक्त्व के साथ सासादन में नहीं जाता यह अभिप्राय है। 'सासादन में उपशम सम्यक्त्व का काल है '- इसका अभिप्राय यह है कि उपशम सम्यक्त्व काल को अंतिम ६आवली की अवधि में कोई जीव परिणाम हानिवश सम्यक्त्व रत्न को खोकर(ल.सा.पृष्ठ ८३,मुख्तारी) सासादन (नाशित सम्यक्त्व व मिथ्यात्व गुण के अभिमुख) हो जाता है। (जयधवल १२, लब्धिसार गा. ९९ से १०९, धवल ४/३३९-३४३ आदि)

चौबीस ठाणा में उपशम सम्यक्त्व की प्ररूपणा करते हुए उपशम सम्क्त्व को चौथे थे से ग्यारहवें गुणस्थान तक कहा जाता है, दूसरे गुणस्थान में नहीं कहा जाता है । दूसरे सासादन गुणस्थान में तिर्यंचायु आदि २५ अशुभ प्रकृतियों का बंध होता है, जो उपशम सम्यग्दृष्टि को बिलकुल संभव नहीं है। अतः उपरोक्त समाधान के अनुसार सासादन गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व का काल न मानकर उसका सही अभिप्राय समझना चाहिए। इस द्वितीय गुणस्थान को सासादन सम्यग्दृष्टि कहने का वास्तविक अभिप्राय क्या है? इस संबंध में धवला पुस्तक १, पृष्ठ १६६ का निम्न कथन ध्यान देने योग्य है।

प्रश्न-सासादन गुणस्थान विपरीत अभिप्राय से दूषित है। इसलिए इसमें सम्यग्दृष्टिपना कैसे बनता है?

उत्तर-नहीं, क्यों कि पहले वह सम्यग्दृष्टि था इसलिए भूतपूर्व न्याय की अपेक्षा उसके सम्यग्दृष्टि संज्ञा बन जाती है। वास्तव में सासादन दृष्टि का सही अर्थ है, 'आसादना सहित जिसकी समीचीन दृष्टि होती है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है।'

यहाँ भी इतना विशेष है कि पं. टोडरमलजी के समक्ष श्री धवला आदि ग्रंथों का प्रकाशन न होने के कारण, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा उनके द्वारा रचित अन्य ग्रंथों में बहुत से ऐसे प्रसंग पढ़ने में आते हैं जो सूक्ष्म विवेचन करने वाले श्री धवला आदि ग्रंथों के अनुसार आगम सम्मत नहीं है। कुछ पक्षपाती लोग श्री धवला आदि ग्रंथों के अर्थ को मोक्षमार्ग प्रकाशक के अनुसार तोड़ मरोड़कर अपनी स्थूल बुद्धि का परिचय देते हैं। जब कि उनको धवला आदि ग्रंथों के अनुसार मोक्षमार्ग प्रकाशक में आवश्यक सुधार कर अपनी बुद्धि का परिमार्जन करना मोक्षमार्ग में श्रेयस्कर है।

- १/२०५, प्रोफेसर कालोनी, आगरा- २८० ००२

धर्म्यध्यान-आगम के आलोक में

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥.....समयसार २०६॥
मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णक्षदव्वसु॥.....समयसार ४१२॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं॥ ..... समयसार १८८॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं॥ .....समयसार १८९॥
अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि॥.....समयसार ७३॥
णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को । (१९१)
इदि जो झायदि झाणे अप्पाणं हवदि झादा॥ .....प्रवचनसार २०४॥
जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा। (१९४)
सागारोऽअणगारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं॥ ..... प्रवचनसार २०७॥
जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं॥..... मोक्षपाहुड २६॥

दि. १५.१.२००६

पं. हेमचंद जी जैन द्वारा पं. श्री रतनलालजी बैनाड़ा को पत्र

आज अभी जिनभाषित दिसंबर ०५ का अंक मिला। मेरे नाम से जिज्ञासा छपी? महाश्चर्य हुआ।

मान्यवर बैनाड़ा जी ! दिसंबर २००५ के जिनभाषित अंक में जिज्ञासा समाधान में मेरे नाम से जिज्ञासा छाप कर(उसका समाधान भी मेरे पत्र २९.११.२००५)में उद्धृत धवला(१/१६५) के समाधानानुसार तथा कुछ विस्तृत कर)आपने लगता है, मेरे साथ यह क्या किया है ? मेरे द्वारा पूछी गयी जिज्ञासाओं का समाधान तो नहीं छापा और जो मैंने पूछा ही नहीं उसे कैसे छाप दिया?

आपने आ.क.पं.टोडरमलजी को धवला शास्त्र उपलब्ध न होने से उनके द्वारा रचित मोक्षमार्गप्रकाशक तथा अन्य ग्रंथों के बहुत से प्रसंगों को आगम-सम्मत नहीं ठहराया है। इस आपकीदृष्टि के बारे में क्या कहें? पं. टोडरमल जी को तो विद्वत् जगत ने आचार्यकल्प की उपाधि से विभूषित किया था। जिसको आगम-अध्यात्म के कथनों का या चारों अनुयोगों का सत्यार्थ स्वरूप भासित हो गया है तो उसे 'छलं न गृहितव्यम्'(समयसार गा.५)को नहीं भुला देना चाहिए। आ.क. पं. टोडरमल जी ने तो दूध का दूध पानी का पानी कर दिखाया है। भले उनके सामने धवला शास्त्र नहीं था, तथापि उन्होंने मोक्षमार्ग प्रकाशक में अनंतानुबंधी कषायों को सम्यक्त्व घातक तो मान्य किया ही है, किंतु आप तो मात्र सम्यक्त्व विघातक ही मानते हैं! चारित्र विघातक नहीं मानते हैं? आप कहते जरूर हैं कि अनंतानुबंधी द्विस्वभावी है, परंतु मानते -मनवाते एक स्वभावी हैं ! ऐसा अन्याय क्यों? जब कि श्रीमद्वीरसेनाचार्य ने उसे दर्शनमोहनीय का भेद न गिनाकर चारित्रमोहनीय का ही भेद सिद्ध कर रहे हैं? तो यह आगम का अपलाप हुआ माना जायेगा या नहीं? आप्र पत्राचार से हमारा समाधान कर देते तो योग्य होता ! परंतु मेरी आशंका नहीं होने पर भी जो हमने पूछा ही नहीं, उसे हमारे नाम से जिनभाषित में छाप दिया?

मान्यवर महोदय, मेरी-आपकी तत्त्वचर्चा का आधार एक मात्र आगम ही है। अगर कोई पं.टोडरमल जी, पं.जयचंद जी छाबड़ा,पं.गोपालदास जी बरैया, पं.दीपचंदजी शहा, कासलीवाल, आदि विद्वानों को(जिन्होंने तन-मन-धन सब कुछ अर्पण कर मूल कुंदकुंदम्नाय को, जिनवाणी के हार्द को/मर्म को जीवित रखा है!) मान्य नहीं करते हैं,तो क्या कोई उनसे बड़े विद्वान माने जायें? मैंने तो अपने पूर्व पत्रों में बिना आगमाधार के कुछ नहीं लिखा फिर भी आपको मेरी बातें विवेचन/भावार्थ निराधार लगते हैं तो क्या किया जा सकता है? वास्तव में तो आत्मा के विश्वास होने को सम्यग्दर्शन, क्षायिक सम्यग्दृष्टि को व्यवहार सम्यग्दृष्टि मानना-निश्चय सम्यग्दृष्टि नहीं मानना, गृहस्थ/अविरत सम्यग्दृष्टि को मोक्षमार्गी नहीं मानना-आत्मानुभूति रहित मानना आदि बातें मनवाते आये हैं। आपने लिखा है कि आपको १२ वीं शताब्दि तक के ही आचार्य प्रमाण लगते हैं। तो क्या आप श्रीमद्

अमृतचंद्राचार्य, श्रीमद्जयसेनाचार्य की आत्मख्याति/तात्पर्यवृत्ति टीकाओं को मान्य तो करते हुए भी अमान्य करते हैं?यह कहकर कि यह सम्यग्दर्शन की परिभाषा मुनियों के लिए हैं और गृहस्थों के लिए अलग है?

क्षमस्व ! आप मुझे क्षमा करें, कि मुझे इस पत्र में आपको यह लिखना पड़ रहा है। फिर भी मैं आपकी सहृदयता एवं जिनवाणी के प्रति प्रेम-समर्पण भाव की प्रशंसा ही करता हूँ कि आपसे प्रेरणा पाकर मैंने आगम-अध्यात्म ग्रंथों का और भी अधिक गहराई से , निष्पक्ष भाव से स्वाध्याय प्रारंभ कर दिया है। आप भी ऐसा ही करेंगे और किंचित मुझ पर कृपादृष्टि बनाये रखेंगे और मेरे पूर्व में दिये गये समाधानों और जिज्ञासाओं के संदर्भ में अपना सप्रमाण निर्णय /समाधान भेजने की कृपा करेंगे तो आभारी हूँगा। बहुत कहने से क्या लाभ?

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्गमाहप्पं॥८८॥ मोक्षपाहुड

अर्थ-बहुत कहने से क्या साध्य है? जो नरप्रधान अतीत काल में सिद्ध हुए हैं और आगामी काल में सिद्ध होंगे, वह सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।

भवदीय - ब्र. हेमचंद्र जैन 'हेम'

धर्म्यध्यान-आगम के आलोक में

दर्शनं ज्ञानचारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते॥ ३१॥ रत्नकरण्ड श्रावकाचार
न सम्यक्त्व समं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम्॥ ३४॥ रत्नकरण्ड श्रावकाचार
गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृहीश्रेयान्, निर्मोहो मोलिनो मुनेः॥ ३३॥ रत्नकरण्ड श्रावकाचार
अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं बिना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः॥ ४२॥ रत्नकरण्ड श्रावकाचार

क्षमायाचना

इस पुस्तक की छपाई में अगर कहीं अशुद्ध गाथा या श्लोक आदि लिखे गये हों तो वह हमारी भूल है । कृपया पाठक गण मूल प्रतियों में देखकर सुधार कर लेवें और हमें भी अवगत करा शोधन में रही इन भूलों के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

- संपादिका

निजध्रुवशुद्धात्मानुभव

प्रत्यक्ष प्रामाण्यसहित-अविरतसम्यक्त्वी के शुद्धात्मानुभूति की सप्रमाण सिद्धि-चारों अनुयोगों के आधार पर-संकलन

प.पू.अध्यात्मयोगी श्री १०८ वीरसागरजी महाराज-

(कृपया निम्नलिखित संकलन का विस्तृत विवेचन और भी अनेकों संदर्भों सहित उपरोक्त पुस्तिका में पढ़िए। छपी पुस्तकें समाप्त हो गयी हैं। ६४ पेजेस की पुस्तिका की झेराक्स प्रती २० रु. डाकखर्च सहित भेजने पर उपलब्ध हो सकती है।)

इस पुस्तक में पढ़िए-

(१) क्या शुद्धोपयोग ४ थे गुणस्थान में होता है? -

संदर्भ- समयसार टीका -जयसेनाचार्य- गाथा २०१, २०२

(२)क्या अविरती गृहस्थ को शुद्धात्मकानुभव होता है?

संदर्भ-समयसार टीका-श्री जयसेनाचार्य गाथा-३२०,प्रवचनसार टीका-श्री जयसेनाचार्य गाथा-२०-३३,

(३) तत्त्वानुशासन - श्लोक ४६, ४७ - नागसेन मुनि -

(४)धर्म्यध्यान का अर्थ-संदर्भ-कार्तिकेयानुप्रेक्षा- स्वामी कार्तिकेय, गाथा४७१,४७२, ४७३,

(५) भावसंग्रह-आ.देवसानाचार्य-गाथा-३८१,३८२,३८३,

(६) भावसंग्रह-आ.देवसानाचार्य-गाथा-३८३ का अर्थ-

संदर्भ-प्रवचनसार-श्री जयसेनाचार्य-गाथा ८०

(७) यदि सम्यक्त्वादि ४,५,६ वे गुणस्थानों का निर्णय बाह्य लक्षणों से कहे तो?

संदर्भ-धवल पुस्तक १/१५२ ,पंचास्तिकाय गाथा-१६६, नियमसार गाथा-१४४, प्रवचनसार गाथा-७९ त.प्र.,समयसार गाथा-१५२, रत्नकरण्ड - श्रावकाचार- श्लोक ३३, १०२

(८) प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में शुभ और अशुभ उपयोग होता है।-

संदर्भ-प्रवचनसार गाथा- ९,२४८, बृहद् द्रव्यसंग्रह-गाथा ३४, कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा-गाथा ४७०, महापुराण श्लोक-३८,४४/२१

(९) शुद्धभावना का क्या अर्थ है? संदर्भ-प्रवचनसार गा.-२४८,बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा-२८

(१०) शुद्धात्मानुभव-संदर्भ- प्रवचनसार गाथा-२५४-तात्पर्यवृत्ति

(११) वीतराग स्वसंवेदन- संदर्भ-समयसार तात्पर्यवृत्ति गाथा-९६

(१२) धर्म्यध्यान-संदर्भ-ज्ञानार्णव-४/१७

(१३) अनुभूति की समानता- संदर्भ-ज्ञानार्णव- २९/४५, १०४, महापुराण २१/११, प्रवचनसार गाथा-१८१, स.सत्या-गाथा १८६, सर्वार्थ सिद्धि-गाथा-९/२९

(१४) गृहस्थ को अनुभूति होती है।-

संदर्भ-महापुराण २१/२१, ७५, समयसार गाथा-११,तत्त्वार्थसूत्र-६/१,२,३

(१५) सम्यक्त्व देवगति का कारण क्यों कहा?

संदर्भ-तत्त्वार्थसूत्र ६/२१

(१६) अविरत सम्यक्त्वी को संवर होता है-

संदर्भ- बृ.द्र.संग्रह गाथा ३५ टीका, प्रवचनसार गाथा ९ टीका ता.वृ.

(१७) अविरत को आत्मानुभव कैसा होता है?-

संदर्भ-तत्त्वानुशासन श्लोक ५४, ५८, ६३, ६४, ६५

(१८).४ थे, ५ वें, ७ वें गुणस्थान के अनुभव में क्या अंतर होता है?

संदर्भ-तत्त्वानुशासन श्लोक ४९, प्रमेय कमल मार्तंड २/१२/२४५

(१९) शुद्धोपयोग कैसा है?

संदर्भ-प्रवचनसार गाथा १४

(२०) ४ थें गुणस्थान में आत्मानुभव मानेंगे तो कोई व्रती नहीं होगा?

संदर्भ-इष्टोपदेश श्लोक ३७

(२१) धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान - तीन प्रकार के सम्यग्दर्शन में क्या अंतर है?

संदर्भ-धवला पुस्तक १३/७४

(२२) सकलादेशी-विकलादेशी-

संदर्भ-अष्टसहस्त्री ३/२११, २१२, परमानंद स्तोत्र १०, प्रवचनसार गाथा १९१, नियमसार गाथा ९६-कलश ३४, २५, २६, ५८

(२३) शुद्धत्व का पक्ष -

संदर्भ-समयसार १४२, जैन सिद्धांत कोश २/५६५, नयचक्र देवसेनाचार्य, समयसार कलश १२२, समयसार गाथा.१७३ से १७६, समयसार१७७, १७८, तात्पर्यवृत्ति

(२४) जघन्य आत्मभावना गृहस्थ को होती है ?

संदर्भ- मोक्षपाहुड २/३०५

(२५) गृहस्थ को ध्यान होता है-

संदर्भ-भावसंग्रह ३७१,३९७,६०५

(२६) धर्म्यध्यान-शुक्लध्यान

भावपाहुड से ८१/२३२/२४, द्रव्यसंग्रह गाथा ३४, प्रवचनसार गाथा १८१

(२७) संदृष्टि कोष्टक -संदर्भ-आप्तमीमांसा १०८

(२८) स्वात्मानुभव - संदर्भ - क्षु. धर्मदास

-संदर्भ-निजध्रुवशुद्धात्मानुभव(प्रत्यक्ष प्रामाण्यसहित)से साभार-संपादिका

विद्वानों के अभिप्राय

श्री जयकुमार क्षीरसागर, वालचंदनगर-

इस विशेषांक में आपने दो विद्वानों केएक ही विषय पर हुई पत्र-चर्चा समाज के सामने रखी है। विषय आसान लगा फिर भी उसकी व्याप्ति, महत्ता गंभीर है। आपका संपादकीय और ब्र. हेमचंदजी ने आसान भाषा में बताया है कि 'वस्तु, ज्ञान और वाणी (कथन) ये तीनों सत्तास्वरूप होते हुए असत्य ज्ञान में और उसके द्वारा कथन में मतलब व्यक्ति के अभिप्राय में होता है। चिंतन अपने अभिप्राय के अनुसार चलता है। अन्यों के अभिप्राय को समझने को तैयार ही नहीं होते अतः कितनी भी चर्चा कीजिए उत्तर अनिर्णित ही रहते हैं। एकमत बनना मुश्किल हो जाता है। उसमें अहं भी रुकावट डालता है। अतः समाज में दो भेद हो जाते हैं। हर कोई धर्म के लिए प्रयास करता है। परंतु जो मैं कहता हूँ वही सत्य है, के स्थान पर जो सत्य है वही मेरा है...आपकी यही भूमिका बहुत प्रशंसनीय है। श्रीमान बैनाड़ा जी का कार्य मैंने बारामती में देखा है। बहुत समर्पित व्यक्ति है। ब्र. हेमचंदजी ने निकाले प्रश्न और उनके जवाब उनके गहन अध्ययन के परिचायक है।

श्री पं. निर्मल जी जैन, सतना -

इस विशेषांक में आपका पुरुषार्थ सराहनीय है। इसे सदा सर्वदा बनाये रखने का प्रयत्न करती रहें। बस्! प्रथमाचार्य महाराज के प्रति आपकी भक्ति और आपकी भावनाओं का आदर करता हूँ।

श्री शांतिलाल जी बैनाड़ा, आगरा -

सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा विशेषांक पढ़ा आपने इस विशेषांक में मेरे अनुज भ्राता श्री रतना लाल जी के प्रश्न एवं उत्तरों का शास्त्रोक्त समाधान बहुत ही सुंदर व्यवस्थित ढंग से किया है।

श्री पं.बाबुलाल जी जैन, अशोक नगर -

धर्ममंगल का यह विशेषांक पढ़कर प्रसन्नता हुई। हमारे स्वाध्या मंडल के लोग बहुत रुचिपूर्वक इसे पढ़ रहे हैं। महिला मंडल भी पढ़ रही हैं। मंदिरजी में रख दिया है। आपने बड़ी कृपा की जो यह अंक निकाला।

श्री डॉ. वीरसागरजी जैन,दिल्ली -

धर्ममंगल का यह विशेषांक पढ़कर बहुत अच्छा लगा। आज पत्रिकाओं को आपके इस सार्थक और रचनात्मक संवाद को बोने के प्रयास का अनुकरण करना चाहिए।

श्री पं. सुशील कुमार जैन, इन्दौर -

धर्ममंगल के इस विशेषांक में आपने जो पत्र -व्यवहार आपने आगम-अध्यात्म के आलोक के उदा. सहित जो प्रस्तुति प्रदान की है, वह अत्यंत सराहनीय है। वस्तुतः सम्यक् दर्शन स्वानुभूतिपूर्वक ही होता है। इसका खुलासा सभी आचार्यों ने प्राचीन शास्त्रों में किया है। उसीका अनुसरण पं. राजमलजी पांडे ने कलश टीका में, लाटी संहिता में, पंचाध्यायी में किया है। इसी परंपरा को पं.बनारसी दास ने नाटक समयसार में इनके पश्चात् पं. जयचंदजी छाबड़ा, पं. टोडरमलजी, पं. दीपचंदजी शाह, पं. सदासुखजी, पं. भागचंदजी, पं. दौलतरमजी, पं. ज्ञानतरायजी आदि सभी ने यह स्वीकार किया है कि चतुर्थ गुणस्थान में स्वानुभूति होती है। वर्तमान युग में श्री कानजी स्वामी ने भी यह स्वीकार किया था। तथा पू. मुनिराज जी श्री वीरसागरजी ने भी इसी का पोषण किया। यह सब अत्यंत स्पष्ट होने पर भी यदि कोई नहीं मानता है तो आश्चर्य लगता है। फिर भी आपने मेहनत तो की है। जो इतना स्पष्ट विवेचन किया। बहुत-बहुत धन्यवाद।

श्री पं.राजमल जी पवैया, भोपाल -

धर्ममंगल का विशेषांक मिला, अध्यात्म चर्चा के योग्य यह विशेषांक बहुतही उत्तम है। आपके सस प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

श्री पं. अनुप चंद्र जी जैन, एडवोकेट, फीरोजाबाद -

धर्ममंगल का सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा ' यह विशेषांक मिला। आप सिद्ध हस्त लेखिका एवं संपादिका है, आपके इस प्रकाशन के लिए बधाई स्वीकार करें।

श्री तुलाराजी जैन, अम्बाह -

धर्ममंगल की यह बहुत ही अच्छी पत्रिका है। यहाँ आपके इस अंक की खूब चर्चा हुई है और प्रशंसा भी करते हैं। इस विशेषांक में आपका सजग, स्पष्टवादी र सही लेखन सबको अच्छा लगता है।

श्री डॉ. अनिल कुमार जी जैन, अहमदाबाद -

धर्ममंगल का 'सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा' विशेषांक मिला। इन गूढ़ सैद्धांतिक चर्चाओं को पढ़कर प्रसन्नता हुई। प्रकाशन के लिए आपको साधुवाद। यदि आपस में मिल बैठकर किसी अंतिम निर्णय पर विचार कर किसी अंतिम निर्णय पर सबकी सहमति होगी तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। भाई श्री हेमचंद जी विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं और विद्वान भी हैं। बहुत -बहुत धन्यवाद, बधाई स्वीकार करें।

श्री माणिकचंद जी पाटनी, इन्दौर -

धर्ममंगल के 'सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा' विशेषांक दो बार पढ़ा। सम्यक् दर्शन तो आत्म प्रतीति स्वरूप ही है। अतः श्री बैनाड़ा जी से अधिक समाधान की अपेक्षा है। जब भी इस विषय में जानकारी प्रकाति हो तो अवश्य भेजिए। इन दिनों निश्चित ही जो लेख, संपादकीय आप की पत्रिका में पढ़ने को मिल रहे हैं, इससे आपकी पत्रिका में निखार आया है। इसके लिए आपको बधाई, तथा आपकी यह पत्रिका दिनोंदिन पाठकों के लिए आकर्षण का केंद्र बने, इन्हीं शुभ कामनाओं के साथ।

श्री मनोहर एस. गौराण्णा, बेलगाँव -

धर्ममंगल के 'सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा' इस विशेषांक को पढ़कर प्रमुदित हूँ। ऐसी चर्चा आजकल दुर्मिल हो गयी है। आपके हाथों ऐसी ही जिनवाणी की निर्मल सेवा होती रहे यही शुभकामना है।

श्री ऐलक चेतन सागर जी - मनोहर थाना, झालावाड़ -

धर्ममंगल के 'सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा' विशेषांक प्राप्त हुआ। उसका अध्ययन किया। पं. रतनलाल जी बैनाड़ा विद्वान हैं, परंतु अध्यात्म ग्रंथ के रहस्य को खोलना चाहिए। आज के अधिकांश साधुओं में भी यही बात देखने को मिलती है। इंजिनियरिंग में थ्योरी और प्रैक्टिकल होते हैं, उसी प्रकार जैन धर्म में भी थ्योरी और प्रैक्टिकल होते हैं। अर्थात् पहले चारों अनुयोगों द्वारा उनकी गहराई समझी जाती है, जैन दर्शन सूत्रों का, सिद्धान्तों का ज्ञान व श्रद्धान किया जाता है, तत्पश्चात् दीक्षा लेकर सिद्धान्तों पर अमल करते हुए समतापूर्वक एवं शांतिपूर्वक आत्मसाधना की जाती है।

श्री डॉ. पी.बी.पनवेलकर, वर्धा -

धर्ममंगल के 'सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा' इस पुस्तिका के रूप में एक ऐसी [illegible] है, जिससे हम जैसे अल्पज्ञानी के भी ज्ञान का अंशतः उघाड़ होता है। आपने निष्पक्ष भाव से जो स्वस्थ वीतराग चर्चा प्रस्तुत की है, आपका अभिनंदन ! दोनों विद्वानों ने आगम के

अनेक संदर्भ प्रस्तुत किये हैं। पं. बैनाड़ा जी ने जिस विश्वास की बात की है, मैं सोचता हूँ कि विश्वास तो तब होता है जब अनुभव होता है। सात कर्म प्रकृतियों के अभाव से तथा द्रव्य कर्म, नोकर्म, भावकर्म विरहित शुद्धात्मा में ही स्वभाव के आश्रय से यह प्रतीति होती है। आ.समंतभद्र के अनुसार सामायिक करते समय भी श्रावक को वस्त्रों का उपसर्ग हुए मुनि जैसा होता है। कारण उस समय बाह्याभ्यंतर परिग्रहत्याग होता है। अतएव अविरत सम्यग्दृष्टि की प्रतीति ही आत्मानुभूति है। 'निजशुद्धात्मानुभव' पुस्तक पू. वीरसागरजी की अमोल देन है।आपने यह पुस्तक भेजकर हम अल्पमतियों का बड़ा ही उपकार किया है।

श्रीमती विमला जैन, कटनी -

धर्ममंगल का 'सम्यक् सम्यक्त्व चर्चा' विशेषांक प्राप्त हुआ। आपकी लेखनी पाठकों को प्रभावित करती है। साथ ही शास्त्र सम्मत बातें/प्रकरण सुश्रावक को दृढ़ निश्चयी भी बनाती है। आपके विचार प्रेरणास्पद तथा जैन आस्था को बलवती बनाने में एकदम सक्षम हैं। यह कृति निश्चय ही साधना पथ पर अग्रसर होने में सहयोगी होगी ऐसा विश्वास है।

शुल्क आदि भेजने हेतु निवेदन

धर्ममंगल का वार्षिक शुल्क रु.१००/-, आजीवन डिपॉझिट रु.११००/-, संरक्षक डिपॉझिट रु. ५००१/- म.ऑ.,डी.डी. या कोअर अकौंट द्वारा भेज सकते है। देशभर में कहीं से भी **पंजाब नैशनल बैंक द्वारा हमारे कोअर अकौंट नंबर 450800 210000 2842 है। कृपया शुल्क रकम+२०रु. बैंक कमिशन सहित भेजिए। यह रकम आप संपादिका,धर्ममंगल, लीलावती जैन** क नाम से भेज सकते हैं। रकम भेजने के बाद हमें आपका नाम-पता,(पोस्ट पीन कोड सहित) रकम, भेजने की ता., आपका फोन नं.एवं किस हेतु से रकम भेजी है इसका **खुलासा भेजना अत्यावश्यक है।** -लोकल चेक के अलावा बाहर गाँव के चेक स्वीकार नहीं किये जाते। आजीवन एवं संरक्षक डिपॉझिट के व्याज पर अंक मिलता है। अंक बंद पड़ने पर डिपॉझिट वापिस किया जाने की गैरंटी है।

- संपादिका

※ परमानन्द स्तोत्र ※

अकलंकदेव स्वामी

परमानन्द संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्।।१।।
अनन्तसुख-सम्पन्नं, ज्ञानामृत पयोधरम्।
अनन्तवीर्य सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः।।२।।
निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंग विवर्जितम्।
परमानन्द सम्पन्नं, शुद्ध चैतन्यलक्षणम्।।३।।
उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यान्मोहचिन्ताचमध्यमा।
अधमा कामचिन्तास्यात्परचिन्ताऽधमाधमा।।४।।
निर्विकल्पसमुत्पन्नं, ज्ञानमेवसुधारसम्।
विवेकमञ्जलि कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः।।५।।
सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द कारणम्।।६।।
नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः।।७।।
द्रव्यकर्म मलैर्मुक्तं भावकर्म विवर्जितम्।
नोकर्म रहितं बिद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः।।८।।
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवथितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम्।।९।।
तद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनोयेन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कार लक्षणम्।।१०।।
ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानास्ते दुःखहीना नियमाद् भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, ब्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव।।११।।
आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्त संकल्पविकल्पमुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम्।।१२।।

चिदानन्दमय शुद्धं निराकारं निरामयम्।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसङ्ग विवर्जितम् ।।१३।।
लोकमात्र प्रमाणोऽयं, निश्चयेन न संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमैश्वरैः ।।१४।।
यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गत-विभ्रमः।
स्वस्थ चित्तः स्थिरिभूत्वा, निर्विकल्प समाधिना।।१५।।
स एव परमं ब्रह्म, स एव जिन पुङ्गवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरूः।।१६।।
स एव परमं ज्योतिः स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः।।१७।।
स एव सर्व कल्याणं, स एव सुख भाजनम्।
स एव शुद्ध चिद्रूपं, स एव परमः शिवः।।१८।।
स एव परमानन्दः, ज्योतिः सुखदायकः।
स एव पर चैतन्यं, स एव गुणसागरः।।१९।।
परमाह्लाद-सम्पन्नं, रागद्वेष विवर्जितम्।
अर्हन्तं देहमध्येतु, यो जानाति स पण्डितः।।२०।।
आकार रहितं शुद्धं, स्व-स्वरूप व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ।।२१।।
तत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्द चैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः।।२२।।
पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः।।२३।।
काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डितः।।२४।।

आगम भाषा			अध्यात्मभाषा	फल	
क	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य 'स्वद्रव्य' सकलादेशी	समीचीन	सम्यक्त्वी
ख	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य पर्याय अथवा अन्यद्रव्य	असमीचीन अथव व्यवहाराभास	मिथ्यात्वी
ग	द्रव्य	०	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करन योग्य 'द्रव्य'	निश्चयाभासी	मिथ्यात्व
घ	०	पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य 'पर्याय'	व्यवहाराभासी	मिथ्यात्वी
च	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य निरपेक्ष 'द्रव्य पर्याय'	असमीचीन उभयाभासी	मिथ्यात्वी
छ	०	०	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य 'द्रव्य'	असमीचीन (अंधश्रद्धा	मिथ्यात्वी
ज	०	०	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य 'पर्याय'	असमीचीन	मिथ्यात्वी
झ	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय योग्य 'स्वद्रव्य' विकलादेशी	असमीचीन	मिथ्यात्व
ट	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य 'स्वद्रव्य'	असमीचीन	मिथ्यात्वी
ठ	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य 'पर्याय' अथवा अन्यद्रव्य	असमीचीन	मिथ्यात्व
ड	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	शुद्धात्मानुभूति के लिए आश्रय करने योग्य निरपेक्ष स्वद्रव्य और पर्याय	असमीचीन	मिथ्यात्वी

निजध्रुवचिदानंदात्मा को जानने की पद्धति (चार्ट क्र. १४)

यह मैं शुद्धचिदानंदात्मा हूँ।	यहाँ 'यह' इदन्ता' की प्रतीति है, इसलिए यह 'प्रत्यक्षज्ञान' है। शुद्धात्मानुभव है, निर्विकल्प ज्ञान है।
'वह' मैं ध्रुव चिदानंदात्मा था।	यहाँ 'वह'(तत्ता) की प्रतीति है, इसलिए यह 'स्मरणज्ञान' है, परोक्षज्ञान है, यह शुद्धात्मानुभव नहीं।
जो मैं पूर्व में ध्रुवचिदानंदात्मा था, वह यह ध्रुवचिदानंदात्मा हूँ	यहाँ 'यह+वह'के संकलन(इदन्ता और तत्ता के संकलन)की प्रतीति है इसलिए यह 'प्रत्यभिज्ञान' है, परोक्षज्ञान है, शुद्धात्मानुभव नहीं।
जो जो जीव है वह वह ध्रुवचिदानंदात्मा है।	यहाँ 'जो जो + वह वह' रूप व्याप्ति की प्रतीति है, इसलिए यह 'तर्कज्ञान' है, यह परोक्षज्ञान है। शुद्धात्मानुभव नहीं।
मैं ध्रुवचिदानंदात्मा हूँ,क्यों कि यह पर्याय है। साध्य साधन	यहाँ 'साधन के द्वारा साध्य की प्रतीति है', इसलिए 'अनुमानज्ञान' है, यह परोक्षज्ञान है, शुद्धात्मानुभव नहीं।
मैं ध्रुवचिदानंदात्मा हूँ।	यहाँ 'अंतरजल्प'रूप प्रतीति है, इसलिए यह 'नयज्ञान ' है, परोक्षज्ञान है, शुद्धात्मानुभव नहीं।

पर्याय को जानने की पद्धति

'यह' मैं दुःखी हूँ।	यहाँ 'यह' इदन्ता' की प्रतीति है, इसलिए यह 'प्रत्यक्षज्ञान' है।
'वह' मैं दुःखी था।	यहाँ 'वह'(तत्ता) की प्रतीति है, इसलिए यह 'स्मरणज्ञान' है, परोक्षज्ञान है।
जो मैं पूर्व में दुःखी था, वह यह दुःखी हूँ ।	यहाँ 'वह+यह' के संकलन (इदन्ता और तत्ता के संकलन की) प्रतीति है इसलिए यह 'प्रत्यभिज्ञान' है, परोक्षज्ञान है।
जो जो जीव शल्यसहित होता है वह वह दुःखी होता है।	यहाँ 'जो जो + वह वह' रूप व्याप्ति की प्रतीति है, इसलिए यह' तर्कज्ञान' है, यह परोक्षज्ञान है।
मैं दुःखी हूँ,क्यों कि मेरे हृदय में शल्य है। साध्य साधन	यहाँ 'साधन के द्वारा साध्य की प्रतीति है', इसलिए 'अनुमानज्ञान' है, यह परोक्षज्ञान है।
मैं दुःखी हूँ।	यहाँ 'अंतरजल्प'रूप प्रतीति है, इसलिए यह ' नयज्ञान ' है, परोक्षज्ञान है।